३३७ (मल्हार)

तुम जावौ लावौ बीरी कौन पै मैया।
कब के करि अँचवन माँगत हैं हलधर कुँवर कन्हैया।।
इतनौ बोल सुनत उठि धायौ श्रीदामा भरि झोरी।
ग्वालनि के मंडल मधि नायक हरि–हलधर की जोरी।।
दीनौ बाँटि सबनि अपने कर हँसि–हँसि पान चबाबै।
अब सब चले दानघाटी 'परमानँद' दान चुकावै।।

३३८ (मल्हार)

मुख बीरी राची हरि के रंग सुरंग।
ऐसी कृपा सदा उर ऊपर टारहु जिनि तुम संग।।
हरि हम तुम कौन काम के परत प्रेम में भंग।
'परमानंद' दूध में पानी ज्यों मिलि अंग सु अंग।।

11. आवनी

३३९ (नट)

सुबल श्रीदामा कह्यो सखनि सौं अर्जुन संख बजाइए।
घर जैवे की भई है बिरियाँ गिरिधरलाल जगाइए।।
ठौर–ठौर मधुरी धुनि बाजै मधुर–मधुर सुर गाइए।
कुंजनि सघन जागे नँद–नंदन मुदित जु बीरा लाइए।।
बडी पहेरि के पूरे मनोरथ गोकुल–ताप नसाइए।
लटकत आवत कमल फिरावत 'परमानंद' बढाइए।।

३४० (नट)

लाडिले जे जल जिनहिं पियौ।
जब आरोगौ तब भरि लाऊँ तातौ डारि दियौ।।
उठौ मनमोहन बदन पखारौ सुंदर लोटी लयौ।
तुम जानत हम अब ही पौढे पहर दुपहर भयौ।।
सुनि मृदु बचन स्याम उठि बैठे मान्यौ मात कह्यौ।
'परमानंद' प्रभू भए भूखे मैया मेवा दयौ।।

३४१ (धनाश्री)

• भावै मोहि–माधौ–बेनु बजावनि।
नंदकुँवार[1] देखि हम रीझीं भौंहनु की मटकावनि।।

•भावति मोहि.....से भी प्रारंभ।, १. मदनगोपाल देखि (इ. घ.)

कुंडल लोल कपोल बोल मधु लोचन चारु चलावनि।
कुंतल कुटिल मनोहर आनन मीठी धेनु–बुलावनि।।
स्याम सुभग तन चंदन मंडित उर कर अंग नचावनि।
'परमानंद, ठगी नँदनंदन दसन–कुंद मुसिकावनि।।

३४२ (गूजरी)

मुरली कुनित रंगे सुंदर स्याम तमाल।
जमुना के तीर खेलत[1] आए गोपाल।।
बालक विनोद–संग गावत गीत रसाल।
कबहुँक आनँद–निधि कर–तल बाजै ताल।।
बोलत बिपुल धेनु प्रगट दनुज–काल।
'परमानंद' स्वामी त्रिभंगी भगत[2] कौ प्रतिपाल।।

३४३ (आसावरी)

बाँसुरी बजावत[3] गोविंद[4] नाचत गावत सुंदर गोपीनाथ।
पीतपट चोलना किंकिनी–मंडित नंदनंदन विमल कमल हाथ
ब्रह्मादि इंद्रादि रुद्रादि देवता देखि कौतुक सह–दार भूले।
स्यामसुंदर सुभग नट–लीला–रचित
नंदनंदन तरनि–तनया–कूले।।
बलय कंकन कुनित नूपुर मेखला
ताल पटताल झपताल अंगे।
'दास परमानंद' नंदनंदन कुँवर
ललित गति सरस संगीत–संगे।।

३४४ (आसावरी)

गावै–गावै घनस्याम कान्ह[5] जमुना के तीरा।
नाचत नट–भेषु धरें मंडली अभीरा।।
लोल[6] नैन चारु बैंन अधर धरें बैना।
आवर्त्त[7] कमल-नयन की छबि मंडित कच रैना।।
जल की गति मंद भई सुरभी तृन[8] लीना।
बछरा नहिं छीर पिवत नादहिं मन दीना।।

---

१. खेलनि (इ. घ.), २. भक्तनि–प्रतिपाल, ३. बाजत, ४. सुधंग, ५. तान, सुंदर (क)
६. नैन लोल चारु बोल, ७. आवत मुख कमल छबि, ८. तृन न लीना

मोहे मृग[1] पंछी द्रुम मधुकर मुनि ज्ञानी।
'परमानँद' प्रभु गोपाल लीला बन ठानी।।

३४५ (बिलावल)

हरि–कर–पल्लव लोल बिराजत।
राग–रागिनी कै उपजावत बेनु मधुर धुनि बाजत।।
देव मनुज मुनि खग मृग मोहे जब गूजरी निबाजत।
नाचत मोर मौन धरि कोकिल मेघ अकासनि गाजत।।
ब्रजबनिता मन–परी चटपटी बिसु भए अंजन[2] आँजत।
'परमानंद' काम–रति बाढी भूषन बने न साजत।।

३४६ (सारंग)

हौं तौ इहि बेनुहुँ की चेरी।
नंदनँदन के अधरनि लागति स्रवन सुनत मुख केरी।।
राति दिवस मन उहईं रहतु है बाढी प्रीति घनेरी।
'परमानंद' गोपालहिं भावै लाख बार हित मेरी।।

३४७ (सारंग)

जब कर बेनु गहत।
पासंग ही पूजत नहिं जासोंऽब ब्रह्मानंद कहत।।
खग मृग चित्र–लिखे से ठाढे बदनु चहत।
सुनि धुनि धेनु ठगी दंतनि त्रिनु मौन रहत।।
रोम हरष तरुवर मधु बरषत जलु न बहत।
'परमानंद' धन्य ब्रजवासी सुखु जे लहत।।

३४८ (मल्हार)

कमल–लोचन कान्ह मधुर[3] गावै।
अधर बंसी धरी त्रिजग ग्रीवा करी
कुटिल अवलोकनी केहिं न भावे।।
बदन अंबुज–भासि कुटिल कुंतल अली
केकि–पंखावली[4] सीस सोहै।
स्रवन गुंजा–पुंज कर्निका लंबिता
भौंह मनमथ–चाप भुवनु मोहै।।

---

१. खग मृग नग मुनि मधुकर ग्यानी, २. लोचन (इ. क. ग. घ. ङ च. छ.)
३. मधुरें, ४. पिच्छावली (इ. घ.)

गंड–मंडल चारु विमल कपोल दुति
मुरलिका चुंबिता जगतु जानै।
परम निर्लज्जिता बंस कुल–संग्रही
देखि गोपी–वृंद अनखु मानै।।
तरुन[1] घनस्याम तन बसन वर दामिनी
इंद्र–धनु उदित बनमाल बानी।
गरजिता मंद धुनि हरि गिरा सुंदरा
भक्त चातक मुदित प्रीति मानी।।
नंदनंदन देखि बिगत मानस–बिथा
गोपिका–प्रेम जल नदी बाढी।
'दास परमानंद' सिंधु जादवराइ
मिलन हू[2] अनुसरी रही न ठाढी।।

३४६ (धनाश्री)

बंस सुद्ध जो मुरुली पाई ततो कान्ह कर–कमल धरी।
अधर–पीयूष पान दै मोहन ! बन उद्भव सोहाग करी।।
अस्पर्द्धा काहे कों कीजै जो हरि मानी सोई बडी।
भयौ प्रसाद स्यामसुंदर कौ 'परमानँद' सो सीस चढी।।

३५० (गौरी)

हरि की मधुरी[3] गावनि।
सुनहु सखी ! मन मोहत मेरौ मधुरी बेनु बजावनि।।
गोप–भेष–नट–लीला–विग्रह वृंदावन तें आवनि।
धातु प्रबाल कुसुम गुंजामनि देह–सिंगार बनावनि।।
गावत ग्वाल गोबिंद की कीरति तीरथ ते अति पावनि।
'परमानंददास' अंतरगत अबिरल प्रीति बढावनि।।

३५१ (गौरी)

हरि की आवनी बनी।
गोप–मंडली–मध्य बिराजत है त्रैलोक–धनी[4]।।
भेष विचित्र कियो[5] है मोहन अंगराग बन–धातु।
बरुहापीड दाम गुंजामनि सीस कमल कौ पातु।।

---

१. बरन (छ.), २. कों, ३. मधुरी मधुरी (बं. ११६/१)
४. मनी (घ), ५. कियें नँदनंदन (इ)

नाचत गावत बेनु बजावत गोधन–सँग गोबिंद।
वासरगत सुंदर ब्रज आवत है प्रभु 'परमानंद'।।

३५२ (गौरी)

आवै–आवै गोपाल बन्यो देखौ ब्रज–नारी !
कमल–नयन रूप ऊपर तिलु–तिलु करि वारी।।
हाथ लकुट काँख बेत मोरचंद माथै।
जठर बसन पानि बेनु गोधन के साथै।।
धूरि–धूसर गोप–भेष ग्वालनि कौ संगी।
नंदनंदन आनँदकंद नटवर बहुरंगी।।
विस्वमोहन भुवनपाल कमल–नाल फेरै।
स्यामसुंदर बार–बार मधुवन तन हेरै।
जाके चरन–कमल सेवत मुनि लोभी रस–बासा।
उनि मूरति प्रति रति बाढौ 'परमानँददासा'।।

३५३ (आसावरी)

भावै मोहि माधौ की आवनि।
बरुहापीड दाम गुंजामनि बेनु मधुर धुनि गावनि।।
स्याम सुभग तन गो–रज–मंडित भेष विचित्र बनावनि।
बालक–वृंद मध्य नँद नंदन आनँद–रासि बढावनि।।
बासर अंत अनंत संग हित नट–गति–रूप दिखावनि।
'पररमानँद' गोपी–मन आनँद बिरह–ताप बिसरावनि।।

३५४ (आसावरी)

सुंदरता की रासि साँवरौ नागरता की सेतु।
चलत चारु गति मोहन मूरति सबके मन हरि लेतु।।
सकल अंग पेखत ही सुंदर नंद–सुवन अभिरामु।
रुचिर हास मुख ज्योति चंद्रमा सकल देव मुनि–धामु।।
ता दिन तैं मोहि रह्यो न भावै स्रवन सुन्यौं कल बेनु।
'परमानँद' स्वामी हौं मोही आवत चारें धेनु।।

३५५ (सारंग)

आजु बनी वृंदावन तैं आवनि।
मोर–चंद मुगट सिर सोहै बेनु बजावनि नीकी[1] ये गावनि।।

---

१. मीठी गावनि (बं. ३०।५),

मोहन रूप धर्‌यौ है नख–सिख नैन–कमल–दल विमल बिसाल।
सकल सिंगार अनूप[1] बिराजित तिन[2] टूटत त्रिभंगी गोपाल
बनमाला अरु स्रवन गुंजामनि नव मंजरी मनोहर साजु।
'परमानँद' प्रभु बल–सहित तुम गोकुल करहु अखिल जुग राजु।।

३५६ (सारंग)

वह मुख देख्योई मोहि–भावै।
मदनगोपाल जगत कौ ठाकुर बन तैं जब गृह आवै।।
लोचन लोल नासिका सुंदर कुंडल ललित कपोल।
दसन कुंद विंबाधर राते मधुमिव मीठे बोल।।
कुंचित अलक पीत रज–मंडित जनु भँवरनि की पाँति।
कमल–कोस मँहि ते ढिंग बैठे पंडुर बरन सुजाति।।
चंद्रिका चारु मुगट सिर सोभा[3] बीच–बीच मनि गुंजा।
गोपी–मोहन अभिमत मूरति प्रगट प्रेम के पुंजा।।
कंठ कंठमनि स्याम–मनोहर पीतांबर बनमाला।
'परमानंद' स्रवन मनि मंगल कूजत बेनु रसाला।।

३५७ (सारंग)

माधौ भलौ बन्यो आवै देखत जिय[4] भावै।।
मोरपंख चँदवा नीके माथे बाँधि लिए।
गुंजाफल कौ हारु बनायौ[5] सब सिंगारु किए।।
कुंडल–बीच कदंब–मंजरी–चूरन कुंतल सोहै।
मृगमद तिलक भौंह मनमथ–धनु देखत सब जग मोहै।।
स्याम कलेवर गोरज–मंडित कंठ कमल–दल–माला।
'परमानँद' प्रभु गोप–भेष धरि कूजत[6] बेनु रसाला।।

३५८ (गौरी)

बन्यो री ! गोपाल बाल–रस आवै।
मदन–मूरति मनमोहन भावै।।

---

१. *अनूपम राजत*
२. *तन जु बन्यो है त्रिभंग (बं. ३०।५)*
३. *सोहै (इ. घ), ४. मोहि (इ. ग. घ. ङ च. ज.)*
५. *बन्यो है (इ. घ.)*
६. *कूजित (क), कूजै (इ. घ. ज.)*

कुंचित केस पीत[1] रज मंडित बीच–बीच जल बिंदु रहे।
मानहुँ कमल–पत्र पर मोती खंजन–निकट सलोल गहे।।
गोपी–नैन भृंग अति चंचल उडि–उडि परत बदन माहीं।
'परमानंद' प्रेम–रस–लंपट अति आकुल कहाँ जाहीं।।

३५६ (गौरी)

हरि–मारग जोवत भई साँझु।
दिनमनि अस्त भयो गोधूरक आबत बने मंडली माँझु।।
बाजत बेनु रेनु तन–मंडित बनमाला उर लोचन चारु।
बरुहा मुगट स्रवन गुंजामनि बनज धातु कौ तिलक सिंगारु
गोपी–नैन–भृंग–रस–लंपट सादर करत कमल–मधु–पान।
विरह–ताप–मोचन 'परमानँद' मुरलीमनोहर रूप–निधान।।

३६० (गौरी)

जसोदा–नंदनँदन आवै हरि–रूप देखि जीजै।
सादर अवलोकनि सखि नैन–पान कीजै।।
काँध लकुट हाथ बेत मोरचंद माथै।
जठर बसन पानि बेनु गोधन के साथै।।
सेत प्रस्वेत बदन माँहि रेनु मंडित जोती।
बिकसित कमल-पत्र ऊपर लटकै मानौ मोती।।
धातु प्रबाल गुंजा–हार मोरचंद्र सोहै।
बनमाला लुब्ध मधुप उपमा कौं को है।।
बेनु बजावत नाचत[2] गावत घोष–प्रबेस कीनौ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल भक्तनि सुख दीनौ।।

३६१ (गौरी)

माई ! आवत हैं नंदनंदन गोप–भेष कीने।
मोरचंद सीस धरे धेनु–संग लीने।।
कमल–नयन मुख–सरोज बेनु गीत गावै।
वासर–दुख दूरि करै देखत जिय[3] भावै।।
सुख–निधान घोष–ईस बृंदावनचारी।
सरबसु सब गोकुल कौ लीला–अवतारी।।

---

१. सुदेस बदन पर (बं.१३२।१)
२. नृत्तत (क) नृत्त करत, ३. मोहि (इ. घ)

गोपी सब मिलनि चलीं आनँद–रसमाती।
'परमानँद' स्वामी-समीप दीसतिं सुख राती।।

३६२ (कल्यान)

पिछौरा खासा कौ कटि बाँधें।
वह देखि[1] आवत नंद–कुमारु नैन कुसुम–सर साधें।।
स्याम सुभग तन चंदन–लेपित[2] बाँह सखा के काँधे।
चलत चारु गति रूप मनोहर जनु नटवा गुन नाँधें।।
ए पद–कमल तबहि प्रापत हैं बहुते जनमु अराधे।
'परमानँद' प्रभु उनहीं कारन लावत मौन[3] समाधें।।

३६३ (कानरौ)

आवत हैं गोकुल के लोचन !
नंदकिसोर जसोदा–नंदन मदनगोपाल बिरह–दुख–मोचन
गोप–वृंद में ऐसे देखियत[4] जनु नछित्र में पूरन चंदा।
बनज धातु गुंजा पियरौ[5] पटु भेष बन्यौ है[6] आनँद–कंदा।।
बरुहा लसत कंठ बनमाला अद्‌भुत भेष[7] नटाराँभ काछें।
कुंडल लोल कपोल बिराजत मोहन बेनु बजावत आछें।।
भक्त–भँवर पावन जसगावनु इहि विधि ब्रजप्रबेस हरि कीनौ
'परमानँद' प्रभु चलत ललित गति जसुमति धाइ उछंगहि लीनौ।।

३६४ (गौरी)

माई री ! असित कुंतल मधुप–माल नील कमल फूले।
इंदु–बदन चारु हास देखत मन भूले।।
देखहु घनस्यामसुँदर बन तें ब्रज आवै।
नीकौ नट भेष बन्यो मोहि गोपाल भावै।।
बरुहा अबतंस भूषन मोरचंद माथें।
कुनित बेनु संग धेनु गोप–वृंद साथें।।
कोटि काम सकुच धरै लीला तनु सोहै।
'परमानँद' प्रभु गोपाल सबकौ मनु मोहै।।

---

१. देखो (इ. घ. च. छ.) २. चर्चित(ख), ३. मुनी (इ. घ. च. ज.)
४ सोभित (ग. ज.), ५. मनि सेली (ख. के अतिरिक्त)
६. हरि (क. ख के अतिरिक्त), ७. रूप (ग. ङ च. छ. ज.)

३६५ (गौरी)

बन तें आवत हैं मेरी माई।
स्याम मनोहर देखहु नयन भरि रूप की निकाई।।
अमल कमल दल नयन बिसाला।
नव मंजरी बनी बनमाला।।
करतल बेनु मधुर धुनि गावै। नरनारिनि मन प्रीति बढावै ।।
सकल भुवनपति गरुडागामी। गोप[1] भेष 'परमानँद' स्वामी

३६६ (धनाश्री)

गोपाल की आवनी तुम देखहु ब्रजनारी।
मद–गयंद–लटकनि पर छिनु–छिनु बलिहारी।।
मोरमुकुट बनमाला पीतांबर सोहै।
कुंडल मुख जगमगात कोटि काम मोहै।।
बेन बजावत नैन[2] नचावत सुरभी सँग आवै।
जुवती–चकोर–चंद 'परमानँद' गावै।।

३६७ (गौडौ)

देखि गोपाल की आवनी।
कमल–नयन स्यामसुँदर मूरति मन–भावनी।।
बरुह–चंद सीस मुकुट गुंजामनि लावनी।
'परमानँद' प्रभु गिरधर अँग–अँग नचावनी।।

३६८ (कल्यान)

बन तें नव रँग गिरिधर आवत।
आगै री ! गोधन पाछै आपुन धाइ–धाइ अहटावत।।
बरुहा मुकुट हार[3] गरें गुंजा बेनु[4] रसाल बजावत।
सप्त सुरनि बर रागु रागिनी मेघ–गिरा मधु गावत।।
गोप सुतनि के संग बिराजत अरु कर–कमल फिरावत।
'परमानँद' स्वामी की लीला सुर नर मुनि–मन भावत।।

---

१. *नंदसुवन (इ. घ.)*
२. *बैंत भँमावत (छ),*
३. *दाम मनि गुंजा (बं. १३० /१)*
४. *भेष विचित्र बनावत (बं. १३० /१)*

३६६ (कल्यान)

आवत मदनगोपाल त्रिभंगी।
निर्तत गावत बेनु बजावत करत कुलाहल बालक संगी।।
कटि पीतांबर उर बनमाला बन्यो टिपारौ लाल सुरंगी।
बचन रसाल सुरति हौं भूली सुनि मुरली–नाद कुरंगी।।
बरसत कुसुम देव–मुनि[1] हरषत बाजत ढोल दमामा जंगी
'परमानँद' स्वामी भटनागर स्याम–विनोद सुरत–रस–रंगी

३७० (गौरी)

भईया हो ! आजु बनी गोपाल–मंडली बोलत आवै धेनु।
परम कुलाहल कमल–नयन सँग बाजत आवै बेनु।।
बरुहा मुगट स्रवन गुंजामनि अंगराग बन–धातु।
किएँ सिंगारु सब गोप–मंडली ललित बजावत पातु।।
कोऊ कों गारि देत है कोउ मिलि गावें गीत।
निरगुन ब्रह्म सगुन तन काछें इहि लीला–रस–रीत।।
गोपी एक कहति सखियनि सों चलौ आगै ह्वै लीजै।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर प्रान न्यौछावर कीजै।।

३७१ (वसंत)

हरि जू अवनि की बलिहारी।
वासर गत ठाढी देखति हैं प्रेम मुदित ब्रजनारी।।
रितु बसंत कुसुमति बन राजत मधुप–वृंद जस गावें।
जे मुनि आइ रहे वृंदावन स्याम मनोहर भावें।।
भेष बिचित्र बन्यो है मोहन गुंजा मनि उर–हार।
मोर–पिच्छ सिर मुगट बिराजत नंदकुमार उदार।।
घोष प्रवेष कियो है इहिं बिधि गोरज–मंडित देह।
'परमानंददास' हित कारन जसुमति नंद–सनेह।।

३७२ (सारंग)

बने बन आवत मदनगोपाल।
नृत्यत[2] हँसत हँसावत कुलकत[3] संग मुदित ब्रजवाल।।

---

१. गन (ङ. छ.)
२. नर्तत (ङ. छ.)
३. किलकत (इ. घ. ङ. च. छ.)

बेनु मुरज उपंग चंग मुख चलत बिविध सुरताल।
बाजे[1] अनेक बेनु–रव संमिलत कुनित किंकिनी–जाल।।
जमुना तट निकट बंसीवट मंद समीर सुढाल।
राका–रजनी[2] विमल ससि क्रीडत वृंदा–विपिन नँदलाल।।
स्याम सघन तन कनक–कपिस पट उर लंबित बनमाल•
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि चंचल नयन बिसाल।।

३७३ (गौरी)

अहो बल ! हौं जिय बहुत[3] डराति।
गोधन लैऽब[4] सबारे आबहु कतब करत हौ राति।।
एकहि बार[5] करत दोऊ भोजन जसोमति करति बयारि।
देत[6] हुंकार स्याम मनोहर जननी प्रीति बिचारि।।
बालकृष्ण[7] कमल–दल–लोचन सिखवत रहियहु तात।
तुम अग्रज वसुदेव के नंदन जानत हौ सब बात।।
तब हँसिकें बोले संकरषनु धेनुक मार्‌यो आजु।
'परमानंद' या कानन में नंद–सुवन[8] कौ राजु।।

३७४ (गौरी)

देखौ माई ! मदनगोपाल बने।
नख–सिख रूप बिचित्र बिराजत बाजत बेनु सुने।।
बरहापीड दाम गुंजामनि कटि पीतांबर बाँधे।
लोचन लोल बिसाल कमल–दल मानु कुसुम सर साँधें।।
कुंचित अलक तिलक मृगमद रुचि गो–रज–मंडित देही
बोलत धेनु गोप–बालक सँग परमानँद' सनेही।।

३७५ (गौरी)

आउ हो आउ गुसाँई नँदनंदन ! लै धेनु।
साँझ परी है[9] भई अब रातें कहाँ बजावै बेनु।।

---

१. वाद्य (ज.) २. रजनि पूरन ससि क्रीडत है नंदलाल (ङ छ.)
• अति कमनीय बने ब्रजसुंदर गोपिनि के मन जाल।।
इतना अधिक पाठ भी १–२ प्रतियों में।
३. खरी (ख) अधिक, ४. किन लै आवौ भैया कित पारत हौ राति।
५. थार, थार में जेंवत दोउ०, ६. सुंदरस्याम देत हुंकारी
७. बालक कान्ह निपट भोरे हैं सिखवत, ८. नंदन कौ
९. अब भैया रातें (इ. घ. ङ छ.), है अब भैया रे। (ग. च. ज.)। अब होत है रजनी।

सिंध व्याघ बिग बहुत रहत हैं तिनिकौ डर तोहि नांहि
वृंदावन[1] घनस्याम मनोहर चलहु दौरि घर जाहिं।।
तरुवर चढि ग्वाल सब टेरत कह्यौ न सुनै हमारौ।
नंद–जसोदा मारगु जोवत जिनिकौ खरौ पियारौ।।
भुवन चतुर्दस जाहि समाने निगम पार नहिं पावै।
'परमानँद' प्रभु त्रिगुन–रहित हैं ताहि ग्वाल डरपावै।।

३७६ (मल्हार)

इनि मोरनि की भाँति देखि नाचै गोपाला।
मिलवत गति भेद नीके मोहन रिपुसाला[2]।।
गरजत घन मंद–मंद दामिनि दरसावै।
झिमिकि–झिमिकि बूँद परै राग[3] मलार गावै।।
चातक पिक सिखर[4] कुंज बार–बार कूजै।
वृंदावन–कुसुम–माल[5] चरन–कमल पूजै।।
सुर नर मुनि कामधेनु देखनि कौतुक आवै।
भगत उचित वारि फेरि 'परमानँद' पावै।।

३७७ (सारंग)

स्याम अंग सोभित है तनियाँ।
पाग दुपेची सीस बिराजति नख–सिख लौं भूषन बनियाँ
धेनुचराइ सखनि सँग आवत मात जसोदा लै हरिकन्हिया
'परमानँददास' कौ ठाकुर श्रीवृषभानु सुता उर–मनियाँ।।

३७८ (गौड़ी)

आवत मोहन धेनु लिए।
बाजत बेनु रेनु तन–मंडित बाहु श्रीादामा–अंस दिए।।
कटि पट पीत लाल उपरैना अरु नौतन बनमाल हिए।
कुंडल लोल कपोल बिराजित मोरपुच्छ सिर मुकुट दिए
ब्रज–जन कुमुद निरखि प्रफुलित भईं रूप–सुधा नैननि जु पिए।
'परमानँददास' कौ ठाकुर बासर ताप कौ नास किए।।

---

१. कमलनयन (क), २. नटसाला (ग)
३. गौड (इ. क. ग. घ. ङ छ. ज.)
४. सघन, ५. लता

३७९ (गौरी)

मोहन ! नेंकु सुनावहु गौरी।
बन तैं आवत कुँवर कन्हैया पुहुप–माल लै दौरी।।
ग्वाल–बाल के मध्य बिराजित टेरत धूमरि ! धौरी !
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत परि गई प्रेम–ठगौरी।।

३८० (गौड़ी)

आरती जुगलकिसोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर कीजै।।
गौर स्याम मुख देखत जीजै।
रसिक स्वरूप नयन भरि पीजै।।
'परमानँद' प्रभुअविचल जोरी।
नंदनँदन वृषभानुकिसोरी।।

12. गो–दोहन

३८१ (रामग्री)

तनक कनक की दोहनी दै दै री मैया !
तात दुहन[1] सिखवनि कह्यौ मोहि धौरी गैयाँ।।
हरि[2] विषमासन बैठि कें मृदु कर थन लीनौ।
धार अटपटी देखि कें ब्रजपति हँसि दीनौ।।
गृह[3] गृह तैं आँईं सबै देखनि ब्रजनारी।
सचकित मन हरि हरि लियौ हँसि घोष बिहारी।।
द्विज बुलाइ दछिना दई मंगल जसु गावै।
'परमानंद' प्रभु लाडिलौ सुख–सिंधु बढावै•।।

३८२ (बिलावल)

बाबा जू ! मोहिं दोहन सिखाऊ।
गाइँ एक सूधी सो मिलबहु हौं नीकें दुहों कि बलदाऊ।।
लै नोई मेली चरननि में लाडिलौ कुँवर नोवत बछराऊ।
पानि[4] पयोधर धरे धेनु के भाजन बेगि भर्‌यो उपटाऊ।।

---

१. दोहन (क), २. विषमासन हरि बैठिकें गो–अस्तन कर लीनों (ब. ३१।६)
३. घर–घर तें आईं सबै ब्रज–गोप–कुमारी (ब.३।१।६)
• भाव साम्य–सूरसागर प. सं. १०२७ तथा स० भ० बं. १०४।३ में तनक कनक की दोहनी० पाठ भेद के साथ
४. पीन (क)

तब नँदरानी नैन सिरानी[१] द्विजनि बुलाइ दच्छिना दिवाऊ
बारि फेरि पीतांबर हरि पर 'परमानँददास'[२] हि पहिराऊ

३८३ (सारंग)

•बलि गई मेरी गाँइ दुहि दीजै।
बार–बार कहति कुँवरि राधिका स्याम[३] निहोरौ कीजै।।
वह देखौ घटा उठी[४] बादर की बेगि स्याम घर लीजै।
बूंद परै रँग फीको ह्वै है लाल चूनरी भीजै।।
नीकौ दुह्यो दूध धौरी कौ कछुक स्यामघन पीजै।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन कह्यौ हमारौ कीजै••।।

३८४ (सारंग)

•• माई री ! करत हैं गोदोहनु।
कहा करौं घर आयौ[५] न जाई देखि कान्ह मनमोहनु।।
संध्या समै खरिक तैं निकसे[६] देखि[७] गोधन के ठाट।
बीचहिं और भयौ कछु संभ्रम बिसरि गई वह बाट।।
चितवत रूप चटपटी लागी घर मँहि रह्यौ जाई।
'परमानँद' स्वामी नँदनंदन[८] सरबसु लियौ चुराई।।

३८५ (सारंग)

+ तुम मेरी दोहनी दुराई।
मो पें ले लीनी देखनि कौं इहि धौं कौन बडाई।।
निपट सवारे[९] हीं अति आतुर धेनु दुहावन आई।
जानि अकेली हौं[१०] इनि ढोटा बहुतै मान खिझाई।।
द्वारि उघारि बछरुआ[११] मेले बरबट गाँइ चौखाँई।
हौं पचिहारी कह्यौ न मानत बरजत नाकहिं आई।।

---

१. सिराए, २. ग्वाल पहिराऊ
• हौं बलि गई गाँइ दुहि० से भी प्रारंभ है।
३. कान्ह (ङ छ.), ४. उमडी (इ. घ.)
•• सूरसागर प. सं. १३४६ में भी 'बलि जाऊ' गैया दुहि दीजै से साधारण परिवर्तन के साथ
••• लाल माई करत० से भी प्रारंभ ५ रह्यो (इ.)
६. निकसी, ७. देखे (ग. ज.), ८. मनमोहन
+ ढोटा मेरो०, रे ढोटा ! तैं मेरी० (बं. ४६।१) से भी प्रारंभ
९. सबेरो हौं उठि आतुर खिरक दुहावन
१०. या ढोटा नें बहुतें भाँति खिझाई, ११. खोलि दिए बछरा

अब[१] मेरी सासु त्रास करै[२] हौं क्यों उबरों घर माई।
'परमानँद' प्रभु तब हँसि दीनों भई बात मनभाई।।

३८६ (सारंग)

कमल–दल–नैना मोहना।
औचकाँ दृष्टि परे मैं देखे जहिं करत गो–दोहना।।
स्याम बरन तन कटि पीरौ पट हाथ पाट की नोई।
वाम पानि दोहनी बिराजति निरखि–निरखि मुख सोई।।
घर बिसर्‌यो तन की गति[३] भूली प्रीति निरंतर[४] बाढी।
'परमानँद' प्रभु जहाँ खेलत हैं निरखि[५] भई तँहि ठाढी•

३८७ (सारंग)

ढोटा कौन को मनमोहनु !
संध्या सभै खरिक में ठाढे सही[६] करत गो–दोहनु।।
ग्वालिनि एक पाहुनी आई देखि ठगी सी ठाढी।
चित चलि गयो मदन–मूरति[७] पैं प्रीति निरंतर बाढी।।
चलि नहिं सकति पगु इक सुंदरि चितु चोर्‌यौ ब्रजनाथ
'परमानंददास' वह जाने जिहि खेल्यौ मिलि साथ।।

३८८ (सारंग)

पौंछत कान्ह[८] गाँइ की पीठि।
कर मुख मूँदि मुदित मुसिकावनि बार बार राधा–तन डीढि।।
कर[९] दोहनी दुहावन आई बछरा दियो खरिक में छोरि
गहहु गहहु तुम्हरे पाँइ लागों पिय तन चित्तै हँसी मुख मोरि।।
कछुक सकुच बलभद्र वीर की घरहि चली दै उलटी सेन।
'परमानँद' स्वामी रति–नाइक दुहुँ दिसि झगरौ लगायो मैन

---

१. *घर मेरी सासु त्रास बहुत दैहै,*
२. *करिहै (ग. ज.)*
३. *सुधि (ग. ज. घ.),*
४. *देखत हो भई ठाढी (इ. घ.)*
५. *परस्पर (ङ छ.)*
• *कमलदल–नैना मोहना' से प्रारंभ होकर कृष्णदास–कृत भी है।*
६. *जहाँ–तहाँ करत (छ.)* ७. *मोहन (ङ. च.)*
८. *स्याम (ग. ज.) लाल,* ९. *सिर धरि माट दुहावन*

३८९ (सारंग)

प्रथम सनेह कठिन मेरी माई !
दृष्टि परी वृषभानु–नंदिनी अरुझे नयन निरवारे[1] न जाई।।
बछरा छोरि खरिक में दीनौं आपनु झिमिकि[2] तिरिछी माई !
नोवत वृष भगई चलि गैयाँ हँसत[3] सखा कहा दुहत कन्हाई!
चारों नैन मिले[4] जब सनमुख नंदनँदन कों रुचि उपजाई।
'परमानंददास' उहि नागरि नागर सौ मनसा अरुझाई।।

३९० (सारंग)

बिनती सुनहु जसोदा रानी !
आकस्मात हमारी गैयाँ तम्हारे सुत पतियानी।।
आजु साँझ बन तें चरि आईं हरि बिछुरत अकुलानी
कैसें[5] हि भाँति न देत दुहाईं केतिक रैन बिहानी।।
मैं चलि आइ जताइ[6] दियौ अब दूध वृथा भयौ जानी।
कैसैं कै बोलों नंदराइ सौं इतनी कहत सकानी।।
री ! तू बेगि जाइ लै मदनगोपालै नंद–घरनि सुनि[7] मानी।
'परमानँद' प्रभु चले संग उठि कापें परत बखानी।।

३९१ (सारंग)

• साँवरे गोबिंद नैन लोला।
ग्वालि ठाढी हँसै प्रान हरि में बसै काम की बाबरी चारुबोला
आउ री ग्वालिनी ! मेलि[8] दै बाछरू
आनि दै दोहनी हाथ मेरे।
धेनु धौरी दुहौ प्रेम बातै कहौ मेरे मन लाग्यौ है रूप तेरे
बाल–लीला भली सैन दै कैं चली
दूध दै मोहि घर आपि[9] आऊँ।
'दास परमानंद' नंद–नँदन केलि
चौर–चर्या रजनि मिलन पाऊँ।।

---

१. निवारे (इ. घ.), २. झमकति रोझी आई,
३. हँसति सखी, ४. भए (इ. घ.)
५. क्योंहू भाँति नहिं देति दुहामन, ६. जनाइ (क. ख. के अतिरिक्त), ७. सनमानी
• साँवरौ... गोविंद, माई साँवरौ० से भी प्रारंभ हैं।
८. छोरि दै (इ.), ९. पेलि (ग)

३६२ (देवगंधार)

तुम पै कौन दुहावत गैयाँ।
गूढ भाव सूचत अंतरगत अतिसै काम की नहियाँ।।
गुपत प्रीति तासौ मिलि कीजै होइ तुम्हारी दैयाँ।
ज्यों भावै त्यों मिलत सबनि सौं इहै सिखाए मैया।।
लै जु रहे कर कनक–दोहनी बैठे हैं[१] अध पैयाँ।
'परमानँद' गोविंद[२] हठ ठान्यौं ज्यों घर खसम गुसैयाँ•

३६३ (कल्यानं)

••देखि मुख ठाढी ये[३] हँसै।
धौरी धेनु दुहत नँदनंदन राधा[४] हृदय बसै।।
सेली हाथ बछरुआ ढीलत[५] कौन–कौन छबि लागै।
मोचत धरत दोहनी चाँपत मन उपजत अनुरागै।।
इहि लीला ब्रह्मा सिव गाई नारदादि मुनि ज्ञानी।
'परमानंददास' सुख पायौ अरु सुक व्यास बखानी।।

३६४ (सारंग)

गावति मुदित खरकि में गोपी[६] सारँग रागें मोहनी।
बार–बार हरि कौ बदन निहारति हाथ कनक की दोहनी
कनक लतासी चंपक–बरनी स्याम तमाल गोपाल की जोरी
ठाढी निकट[७] मिली तन–मन सों नंदनँदन सौं प्रीति न थोरी
उपमा काहि देउँ को लाइक उभय[८] सरूप नागरी–नागर।
प्रीति परस्पर ग्रंथि न छूटै 'परमानँद' स्वामी सुख–सागर

३६५ (सारंग)

•तुम्हारे खरिक बताई हो ! वृषभानु हमारी गैया।
बार–बार द्वार है टेरत संकरषन के भैया।।
संध्या समै बाग तें बिछुरी अधरातिक[९] सुधि पैया।
वा बिनु मो पैं रह्यौ न परै यों[१०] कहत हैं कुँवर कन्हैया।।

---

१. हरौ (इ. घ.), २. जो हठ हरि मांज्यो
• सूरसागर प. सं. १३५२ पर भी साधारण परिवर्तन के साथ
•• निरखि (ग) से भी प्रारंभ है
३. ह्वै जु (च), ४. लाडिली हीय, ५. मिलवत, ६. गोरी,
७. निरखि निकट तन–मन सों नंदनँदन की, ८. उनमद रूप तिहारे..... से भी प्रारंभ,
९. अरध राति (बं. १२८।६), १०. छिनु (घ)

सुनि पिय–बचन किसोरि अटा चढि जाल–रंध्र है झाँकी।
'परमानँद' चितु[1] करषि लियौ उनि चंद्र–बदनि भौं बाँकी

३६६ (सारंग)

गोविंद ! तेरी गाँइ अति बाठी।
सुनि ब्रजनाथ ! दूध के लालचि मेलि सकल नहिं लाठी
अपनी इच्छा चरै उजागर संक न काहू की मानैं।
तुम्हें पत्याइ स्यामघन सुंदर तुम्हारौ बोलु[2] पहिचानैं।।
ऊँचे कान करै मोहि देखत बिजुकि–बिजुकि होइ[3] ठाढी
'परमानंद' नंद के घर की बाल–दसा की बाढी।।

३६७ (सारंग)

खरिक में कौन की हैं गैयाँ।
सोने सृंग हार मोतनि के नूपुर बाजै पैयाँ।।
अद्‌भुत रूप धेनु धौरी कौ मेरे संग दिखाऊँ।
तहाँ ठाढे मनमोहन देखे परम मुदित सचु पाऊँ।।
सुनि री कन्हैया ! बाबा लाए ए गैयाँ हैं मेरी।
श्रीदामा सँग कहत कान्ह सौं ते दुरि कौन कहत है तेरी।।

३६८ (सारंग)

मेरौ नेंकु न छाँडौ गोहना।
बारंबार खरिक के द्वारें हौं लै निकसी दोहना।।
कहा कहौं इक बात लाज की तुम दै पूछौ सौंह ना।
माँगत अधर–पान लर खेंचत कंध भुजा अवरोहना।।
करत अटपटी तुम जु रसिकवर ! हम लीनी बिनु मोलना
'परमानंददास' कौ ठाकुर सब ब्रज–जन–मन–मोहना।।

13. ब्यारू

३६९ (ईमन)

लाडिले बोलति ! है तोहि मैया।
संझा समै गोधन सँग आवत चुंबन दै करि गोद बैठैया।।
मधु मेवा पकवान मिठाई दूध भात और दार बनैया।
'परमानंद' प्रभु करत बियारू जसोमति देखि बोहोत सुख पैया।।

---

१. प्रभु करषि लियो चित्त (बं. १२८।६), २. कर, ३. है (ग. घ. ज.)

४०० (कल्यान)

चलौ लाल ! मेरें कीजै आइ बियारी।
दूध भात अरु दार बनाई कहति रोहिनी महतारी।
इतनी सुनत तुरत उठि धाए प्रीति जु मनहिं बिचारी।
'परमानँद' प्रभु की बतियाँ सुनि जसोमति जाइ बलिहारी

४०१ (कान्हरौ)

बियारू करत हैं बलवीर।
आसपास सब सखा मंडली सुबल सखा बलबीर।।
मधु मेवा पकवान मिठाई औटि जमायो छीर।
हँसत परस्पर खात खवावत झपटत लै कर चीर।।
यह सुख निरखि–निरखि नँदरानी प्रफुलित अधिक सरीर
'परमानंददास' कौ ठाकुर भक्त–हेत अवतीर।।

४०२ (कान्हरौ)

दूध पियौ मनमोहन प्यारे !
बलि–बलि जाउँ बदन देखनि कों तरसत हैं नैननि के तारे
औट्यौ दूध पीजै सुख दीजै संग लिये बलभद्र भैया रे !
'परमानँद' मोहि गोधन की सौं प्रातहि उठत करों धैंया रे !

४०३ (मल्हार)

दूध पीवत भरि कनक कटोरा हरि हलधर बिच होर परी री !
अरस परस दोऊ पीवत प्यावत जन मन मोद भरी री !
नेंन्ही–नेंन्ही बूँदनि बरसनि लाग्यो
दामिनी चमकत होत सखी री !
ऐसौ सुख देखत 'परमानँद'
ज्यों–ज्यों मानत सुफल घरी री !

14. आसक्ति

गोपिका जू के वचन–

४०४ (आसावरी)

जा दिन तें सुंदर बदन निहार्‌यो।
ता दिन तें मधुकर–मन सों मैं
बहुत करी निकस्यो न निकार्‌यो।।

लोक–लाज कुल–कानि जानि जिय
दुसह बिलोकि फिरौ करि छाय्यो।
तात मात पति भ्रात भवन में
सबहिनि कौ कहिबौ सिर धाय्यो।।
होनों होइ सु होउ करम–बस
सजनी जिय कौ सोचु निबाय्यो।
दासी भई 'दास' परमानँद'
भलौ पोच अपनों न बिचाय्यो।।

४०५ (धनाश्री)

• कहा करों मेरी माई ! नंद लडैते मनु[1] चोय्यौ।
स्याम सरीर कमल दल लोचन
चितवत चले कछुक मुख मोय्यो।।
हौं अपने आँगन ठाढी ही तबहि तें द्वार है निकसे आइ
नेंकु दृष्टि दीनी उन ऊपर कर मुख मूँदि चले मुसिकाइ।
तब तें मोहि घर की सुधि भूली जब तें मेरे नैननि लाइ
'परमानंद' काम रति[1] बाढी कबहिं मिलैं कब देखौं जाइ।।

४०६ (आसावरी)

सखि ! हौं अटकी इहि ठौर।
देखि कमल–मुख स्यामसुँदर कौ नैना[2] उ भए भौंर।।
घर[3] ब्यौहार करत नहिं आवै स्रवन सुने कल गीत।
अपनी ओर बचै हौं लीनी सुबल श्रीदामा मीत।।
लोक–वेद कौ मारगु छाँड्यो मात–पिता की लाज।
सबै अंग सुधि[4] भई 'परमानँद' भए राम के राज।।

४०७ (आसावरी)

माई री ! नांहिन दोस गोपालै।
मेरौ मन अटक्यो उनि[5] मूरति अंबुज नैन–बिसालै।।
कौन–कौन कौ मनु न चुरायो वह मुसकनि वह गावनि।
वह मुरली वह चालि मनोहर वह कल बेनु बजावनि।।
अपनौ बिगारु कौन सों कहि आपहि काज रति जोरी।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन हौं अजान मति भोरी।।

---

१. रस (च), २. नैना उनए भोर (इ. ग. ज.), ३. गृह (इ. क. ङ च. छ.),
४. सुद्ध (ङ च. छ.), ५. वा. (क. ख. के अतिरिक्त)

४०८ (आसावरी)

मेरैं माई ! इहै जतनु।
सुनि री सखी ! करिहौं कंठ–भूषन गोविंदे रतनु।।
नैन ओट कबहूँ नहिं करिहौं काहू जानि न दैहों।
अधिक प्रीति कर नंद–लडैतौ घालि हृदै में लैहों।।
कोउऽब गारि देहु सिर मेरे कोउ करौ उपहास।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई सुनि 'परमानँददास'।।

४०९ (आसावरी)

मेरें माई ! हरि नागर सौं नेह।
एक बेर कैसें छूटत हैं पूरब बढ्यौ सनेह।।
अँग–अँग निपुन बन्यो[1] जदुनंदन स्याम बरन तन[2] देह।
जब तैं दृष्टि परे नँदनंदन तब तैं बिसर्‌यौ गेह।।
कोउ निंदौ कोउ बंदौ मन[3] कौ गयौ सँदेह।
सरिता सिंधु मिली 'परमानँद' भयौ[4] एक रस नेह[5]।।

४१० (आसावरी)

•• गोपाल सौं मेरौ मन मान्यौ कहा करैंगो कोई री !
अब तौ चरन–कमल लपटानी[6] जो भावै सो होइ री !
माइ रिसाइ बाप घर मारै हँसै बटौआ लोग री !
अब तौ जिय[7] ऐसी बनि आई बिधिना रच्यो सँजोग री !
बरु इहलोक जाउ किनि मेरौ अरु परलोक नसाइ री !
नंदनँदन हौं तउअ[8] न छाँडौ मिलिहौ निसान बजाइ री !
बहुरि इहि[9] तनु धरि कहाँ पैंहों बल्लव भेष मुरारि री !
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु दैहों[10] बारि री !

४११ (आसावरी)

चित कौ चोर अबहि जो पाउँ।
द्वार कपाट बनाइ जतन करि नीकें माखन दूध खवाउँ।।

• *मेरौ० बाढ्यौ हरि नागर० से भी प्रारंभ हैं*
१. सकल ब्रजसुंदर, २. सब, ३. मो मन गयो०
४. इकटक बरस्यो मेह, ५. तेह (क. ख. के अतिरिक्त)
•• *नंदलाल सों (क) ए री ! गोपाल (ग) सेभी, ६. रति बाढी*
७. आइ बनी है ऐसी बिधिना (क), ८. कबहुँ न (क)
९. कहा इहि तन धरि पैहों (क), १०. दीजै (क)

जैसे निसंक धसत मंदिर में तिहि औसर जो अचानक आउँ।
गहि अपने कर सुदृढ मनोहर बहुत दिननि की रुचि उपजाउँ।।
लै राखों कुच–बीच निरंतर प्रतिदिन कौ तन–ताप बुझाउँ
'परमानंद' नंद[१] नंदन कौ घर–घर कौ परिभ्रमन मिटाउँ •।।

४१२ (आसावरी)

•• अब मोकों मिलै दधि कौ चोर।
लै राखों अपने उर–अंतर जहाँ निपट[२] साँकरी ठौर।।
चूँबों गाल[३] अधर देउँ दंतनि ऐसी चोरी करै न बहोरि।
'परमानंद'[४] आइ गए मोहन निरखि ग्वालि हँसी मुख मोरि।।

४१३ (आसावरी)

मोही री ! इन[५] नैननि की सैन।
स्रवन सुनत सुधि–बुधि बिसरी सब हौं लुबधी[६] मोहन-मुख-बैन।।
सुंदर बदन घूँघट–पट कीनौ चलु री सखी ! प्रीतम सुख दैन
अंग–अंग प्रति सहज माधुरी तेरी सौंह चित रहत न चैन
करगहि कमल खरिकके मारग उनसों बात कही कछु मैं न
'परमानँद' प्रभु सौंह बाबा की मेरी यों गाँइ कहौ दुहि दैन+

४१४ (आसावरी)

नैन की सैन चले दै कानन।
वह चितवि मेरे हृदै में गडि रही सुंदर हास मनोहर आनन
कहि री सखी ! अब कब आवहिंगे जोवति पंथ अकेली ठाढी।
नंद के लाल हर्‌यौ मेरौ मनु जासौं प्रीति निरंतर बाढी
द्यौस जाँउ तौ सब कोउ देखै सकुचि रही कछु मिस न बन्यौ तब।
'परमानँद' गोविंद[७] चन्द बिनु बासर कलप भयौ मोकौं अब

---

१. लाल गिरधर कों (क)
•. सूरसागर प० सं० २५४७ पर भी साधारण अन्तर से
•• कोउ माई ! मिलै.... से भी प्रारंभ है।
२. साँकरी खोरग, ३. मुखै अधर दंतनि दसि जासौं चोरी
४. इतनी सुनत आइ गए मोहन 'परमानंद' हँसी ५. रतनारे नैन
६. जु बँधी मोहन (ग. छ.)
+ सूरसागर पं. सं० १३६० पर भी है, साधारण अन्तर से
७. नंदनदंन बिनु (इ. घ),

४१५ (आसवरी)

• मन हरि लै गए नंदकुमारु।
बारक दृष्टि परी चरननि पर[२] देखनि न पायौ माई ! बदन सुचारु।।
हौं अपने घर सचु सों बैठी पोबति मोतिनि कौ[३] हार।
काँकर[४] डारि द्वार है निकसे बिसरि गयौ तन करत[५] सिंगार
कहा री ! करौ क्यों मिलि है मोहन[६] किहिं मिस हौं जसोदा–गृह[७] जाउँ।
'परमानंद' हौं ठगी री ! अचानक मदनगोपाल भाँवते नाँउ।।

४१६ (आसावरी)

मैं तौ प्रीति स्याम सौं कीनी।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तौ या[८] घर दीनी।।
जो पतिब्रत[९] तौ या[२] ढोटा सौं इनहिं समप्यौं देह।
जो विभिचार तो या ढोटा सौं बाढ्यौ अधिक सनेह।।
जो ब्रत गहौं[३] सो और निबाहौं मरजादा[४] कौ भंग।
'परमानंद' नंदनंदन[५] कौ पायौ मोटौ संग।।

४१७ (सारंग)

••जब तैं प्रीति स्याम सौं कीनी।
ता दिन तें मेरे इन नैननि नेंकहु[६] नींद न लीनी।।
सादर[७] रहत चित चाकु चढ्यौ सौ और कछू न सुहाय।
मन में रहै उपाय मिलन कौ इहें बिचारत जाइ।।
'परमानंद' पीर[८] प्रेम की काहू सौं नहिं कहिये।
जैसें बिथा मूक बालक की अपने तन[९] मन सहिये।।+

• *मो मन लै गयो० से भी प्रारंभ*
१. तन (ग. ङ च. छ. ज.), २. के हार (क. ग. ङ च. छ)
३. काँकरि (घ. ज.), ४. करन (इ.), ५. गिरिधर (क.)
६. घर (ग.), ७. कान्ह (बं. ५।३), ८. ये धरि लीनी
९. पतिब्रतता या ढोटा० (ड. छ.) पतिव्रता तौ या (इ. च.)
१०. नँदनंदन सों (ग. ज.), ११ गह्यो (ग.) करों (च.)
१२. नहिं मरजादा भंग, १३. लाल गिरिधर कौ (क.)
•• *जा दिन प्रीति (ब. २३।११) से भी प्रारंभ है।*
१४. कबहूँ नींद (इ.), १५. सदा रहतु (ग. ज.)
१६. मरम की बातें काहू सों, १७. ही जिय सहिये (बं. १६३।६)
+ सूरसागर प० सं० २४८३ पर भी साधारण अन्तर से।

४१८ (सारंग)

या रस बीधी[1] दिन बन जाती।
मारग खोरि खरिक गिरि गहवर
फिरत निकुंज स्याम रँग[2] राती।।
चरचित चतुर भाव अंतरगत
हिलि मिलि नैन सौं[3] नैन अरुझाती।
चलि–चलि उलटि ठाढी है
कमल–नयन–मुख मुरि मुसिकाती।।
अति कमनीय अंग छबि निरखत
आवत गहगहाइ भरि छाती।
'परमानंद' किसोर नंद–सुत
मदनमोहन[4] मेरे बाल सँघाती।।

४१९ (सारंग)

ता दिन तें मोहि अधिक चटपटी।
जा दिन तैं देखे इनि[5] नैननि
गिरिधर बाँधे माई ! पाग लटपटी।।
चले जात मुसिकाई[6] मनोहर हँसि जु कही इक[7] बात अटपटी
हौं सुनिन स्रवन भई अति आतुर पीर जु हिये[8] मेरे मदनसटपटी
कहा री ! करौं गुरुजन भए बैरी बैर परें मोसौं[9] करत खटपटी।
'परमानँद' प्रभु रूप–विमोही या ढोटा सौं प्रीति अति जटी

४२० (सारंग)

ए ढोटा हठि हरत परायौ मन।
देखत रूप–ठगौरी सी[10] लागति
जगत–विमोहन स्याम बरन[11] तन।।

---

१. बँधी (इ.), २. रसमाती (इ. घ.)
३. नैननि (क), ४. लाल गिरिधर (क.) मदनमनोहर बाल (च.)
५. नैननि भरि (इ. घ.), ६ मुसिकात (इ. घ. च.)
७. मोहि (च), ८. हृदै (ग. ङ च. छ. ज.)
९. नित (इ. ग. घ. ङ च. ज.)
१०. लाई (इ. घ.) ११. सुंदर (इ. घ. च.)

दिन दिन चोंप चौगुनी लागति
पावस रितु मानों नौतन घन।
दामिनि कोटि पीतांबर की छबि
'परमानँद; राजत वृंदावन।।

४२१ (सारंग)

चित न चलै चरननि तैं माई !
कैसें करि घर जाउँ सखी री !
मनु अरमन्यो मेरौ कुँवर कन्हाई।।
मुरलि कौ सबद सुन्यौ जब स्रवननि
मोहन[1] कुंज–निकुंज बुलाई।
गिरिधरलाल रसिक चित चोर्‌यौ मोहन प्रेम–ठगौरी लाई।
मात–पिता मेरौ कहा करहिंगे
अब तौ जिय ऐसी बनि आई।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलि कै
और बात सब देहुँ बहाई।।

४२२ (सारंग)

एक गाँउ कौ बासु कैसें करि धीरज धरौं।
लोचन लुब्ध अटक नहिं मानत जद्दपि जतन करौं।।
वे हरि मगु गवनत गोचारनु हौं दधि लै निकरौं।
पुलकित रोम[2] हरष गदगद स्वर आनँद उमगि भरौं[3]।।
पलक–ओट छिनु जात कलप भरि विरह–अनल जरौं
'परमानंद' कहाँ लगु अनुदिन आरज–पथहि डरौं•।।

४२३ (सारंग)

करनि दै लोकनि[4] कों उपहास।
मन क्रम बचपन नंदनंदन कौ निमिष न छाँडों पास।।

---

१. *मो हरि (च.)*
२. *प्रेम (घ.), ३ गरों (छ.)*
• *'कुंभनदास' की छाप का भी (बं. २१।८)*
और सूरसागर पद सं० २२८३ पर भी प्राप्त है
४. *लोगन (इ. ग. घ. च. ज)*

सब कुटुंब के लोक चिकनियाँ मेरे भाएँ घास।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई क्यों मानोंगी त्रास।।
अब क्यों रह्यौ परै सुनि सजनी ! एक गाँव कौ बास।
ए बातें नीकें जानतु है[1] जन 'परमानँददास'•।।

४२४ (सारंग)

हौं नँदलाल बिना न रहौं।
मनसा बाचा सुनि[2] री सखी ! हौं हित की तोसों कहौं।।
जो कछु कोउ कहौ सिर ऊपर सो हौं सबै सहौं।
सदा समीप रहौं मोहन[3] के सुंदर बदन चहौं।।
इहि तन हरि कौं समर्पनु कीनौं वह सुख कहाँ लहौं।
'परमानंद' नंदनंदन[4] के चरन–सरोज गहौं।।

४२५ (सारंग)

औचकाँ हरि आइ गए।
हौं दरपन लै माँग सँवारति चारौं नैना एक भए।।
नेंकु चित्तै मुसिकाइ जु मेरे प्रान चुराइ लए।
अब तौ भई चौंप मिलिबे की बिसरे देह सिंगार ठए।।
तब तें कछु न सुहाइ बिकल मनु ठगी नंद–सुत स्याम नए
'परमानँद' प्रभु सौं रति बाढी मदनगोपाल[5] आनंदमए।।

४२६ (सारंग)

••गिरिधर लाडिलौ लडबौरा।
अपने रंग फिरत गोकुल में स्याम बरन जैसें भौंरा।।
देखि स्वरूप ठगी ब्रज–बनिता ओढें पीत–पिछौरा।
माथें[6] अमल बरन कौ टिपारौ तन चंदन की खौरा।।

---

१. हो (छ)
• सूरसागर प० सं. २२८२ पर भी साधारण अन्तर से।
२. और करमना हित (ग. ङ छ. ज.)
३. गिरिधर के (क.),
४. लाल गिरिधर के (क.) मदनमौहन के (ग. ज.)
५. गिरधर लाल आनंद (क. ग. ज.)
•• गोविंद लाडिलौ (बं. १३० । २) से भी प्रारंभ है।
६. किंकिनि कनित चारु चलि कुंडल तन (बं० १३० ।२)

जब[1] मुसिकाइ चले गज की गति मेरौ मनु नहिं ठौरा।
भृकुटी कुटिल तैसिये चितवनि जिय भावै नहिं औरा।।
जाकी माया जगत भुलानों सकल देव सिरमौरा।
'परमानंददास' कौं[2] ठाकुर संग ढिठोंना गौरा।।

४२७ (सारंग)

हौं तौ चरन–कमल–रज[3] अटकी।
मदनगोपालै कैसें छाँडों पाछें बहुत दिन भटकी।।
माता–पिता सज्जन–बंधव मिलि बार–बार हौं हटकी।
निंदा करत हँसत मोकौं मारत बरजत पहिलें उठि सटकी
ए तौ सयानु कियौ मैं बुधिबल भलौ[4] भयौ समरथ सौं लटकी।
'परमानँद' प्रभु जानि सिरोमनि लागी काम–कला[5] चतुर नट की।।

४२८ (सारंग)

मेरौ माई ! माधौ[6] सौं मन मान्यौं।
अपनौ तन अरु[7] कमल–नयन कौ एक ठौर करि सान्यौं।।
लोक वेद की[8] लाज तजी मैं न्यौंति आपनें आन्यौं।
एक गोविंदचंद के कारन बैरु सबनि सौं ठान्यौं।।
अब क्यों भिन्न[9] होहि मेरी सजनी ! दूध मिल्यौ जैसे पान्यौं
'परमानँद' मिलि[10] हों मोहन कों है पहिलौ पहिचान्यौं•

४२९ (सारंग)

मेरे नंद कौ लाल जिय बस्यौ।
तब तें सब[11] सुख भयौ सखी री ! नेंकु चितै जब[12] मुरि मुस्यौ
नागरता की रासि साँवरौ इहि स्वरूप[13] मन माँहि कस्यौ।
'परमानँद' स्वामी सुख सागर जाके रस[14] सब ब्रज रस्यौ।।

---

१. *निरतत गावत बसन फिरावत हाथ फूलनि के झौंरा।*
माथे कनक–बरन कौ टिपारौ ओढें पीत पिछौरा (बं. १३० ।२)
२. *की जीवनि संग (बं. १३० ।२), ३. पर (ग.)*
४. *भले समरथ सों (अ. घ. ङ छ.), ५. कला वा नट को (ङ छ.)*
६. *कान्ह सों (बं ५ ।३), माई ! मेरौ मोहन सों (बं. १५ ।२)*
सखी री ! स्याम सों (बं. २७ ।५), ७. औ वा ढोटा कौ
८. *उपहास न मान्यो (बं २७ ।५)*
९. *जात निबेरि सखी री ! मिल्यो एक पै पान्यों (ब. २७ ।५)*
१०. *दास कौ ठाकुर, 'परमानँद' प्रभु मेरे जीवन (बं. २७ ।५)*
• *सूरसागर पद सं० २२८० पर भी 'सखी री ! स्याम सों मन मान्यो*
११. *सरबस भयो, १२. मुरि हँस्यो, १३. सुरूप (इ.), १४. रस–बस सब (बं. ११६ ।१)*

४३० (सारंग)

• मेरौ मन बाबरौ भयौ।
लरिका एक ह्याँ हुतौ ठाढौ ताहि के संग गयौ।।
जानौं नहीं कवन कौ ढोटा वेष[1] विचित्र ठयौ।
पीतांबर–छबि निरखि हर्‌यो मनु पढि कछु मोहि दयौ।।
ग्वालिनि एक[2] पाहुँनी आई ताहि[3] की इहि गति कीनी
'परमानँद' प्रभु हँसत सैन दै प्रेम पानि गहि लीनी।।

४३१ (सारंग)

•• मेरौ मन कान्ह हर्‌यो।
गयौ जु संग नंदनँदन के उहाँ तें न टर्‌यो।।
कहा करौं फिरि बगदि न आयौ स्याम–समुद्र पर्‌यो।
अति गंभीर बुद्धि कौ आलै प्रेम–पीयूष भर्‌यो।।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई भवन–काज बिसर्‌यो।
'परमानंद' भले ठाँ अटक्यौ इहि सब रहौ धर्‌यौ।।

४३२ (सारंग)

जहँ–जहँ चरन–कमल माधौ के तहीं–तहीं मन मोर।
जे पद–कमल फिरत वृंदावन गो–धन संग किसोर।।
चिंतन करौं जसोदानंदन मुदित साँझ अरु भोर।
कमल–नयन घनस्याम सुभग–तन पीतांबर के छोर।।
इष्ट देवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर।
'परमानंददास' की जीवनि गोपिनि पट झकझोर।।

४३३ (सारंग)

मेरौ मन बिगर्‌यो दुहुँ ओर।
सुंदर बदन मुगट की सोभा स्रवननि[4] मुरली घोर।।

• *माई री मेरौ० से भी प्रारंभ है।*
१. *भेख (गं. ज.) चित्र विचित्र*
२. *पाहुँनि एक अपूरब (बं. १३२।१)*
३. *ताहू (इ. ग. घ. ङ छ. ज.)*
•• *माई ! मेरौ मन, माई री ! मेरौ मन..... से भी प्रारंभ हैं।*
४. *स्रवन परी मुरली की घोर (इ. घ.)*

तब हौं भाग्य[1] भवन तें निकसी हरि आए इहि ओर।
मृदु मुसकानि बंक अवलोकनि सरबसु लीनों चोरि।।
हौं बहुतें समुझाइ रही पै कछु बस नाहिंन मोर।
रह्यौ उपचार 'दास परमानँद' बिनु नागर नंदकिसोर।।

४३४ (सारंग)

• मन हरयौ कमल–दल–नैना।
चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मृदु–मधु माधौ–बैना।।
कहा करौं घर गयौ न भावै चलनि बलनि गति थाकी
स्यामसुँदर हठि दासी कीनीं लखि न परै गति ताकी
कहौ [2] उपदेस सहचरी मोसौं कहाँ जाउँ पाउँ।
'परमानंददास' कौ ठाकुर जहाँ[3] लै नैन मिलाउँ।।

४३५ (सारंग)

• केतौ सुख लागत माई री ! नैननि नैन मिलत।
जब गोपाल मनोहर[4] मूरति मधुरी चालि चलत।।
इहि आनंद कहत नहिं आवै देखत नंदकुमार।
बोलत हँसत बिलोकत नीकें बलि मोहन अवतार।।
हौं जानति हों अपने जिय की कतहूँ जानि न दैहौं।
'परमानँद' प्रभु इहईं राखौं लाइ[5] हिये मँहि लैहौं।।

४३६ (सारंग)

अब हौं कैसें रहौं घर[6]।
मदनगोपाल बजाइ मुरली मधुर मनोहर सारँग के स्वर।।
स्रवन सुनत उठि चली सखी री !
दुहुँ दिसि लागे मकरध्वज–चर।
'परमानंददास' बनि[7] आई सनमुख धाइ राति तजे घर।।

---

१. *भागि (ग. ज.) भाजि (इ. घ.)*
• *मेरौ माई ! मनु, माई मेरौ मन.....से भी प्रारम्भ हैं।*
२. *करि,*
३. *जिंहि (ङ. छ.), ग कितौ (क.) से भी प्रारंभ है।*
४. *मनमोहन (इ. ग. ज.)*
५. *घालि (इ. घ.),* ६. *अपने घर (बं. ३७।२)*
७. *बन धाई सनमुख आई राति तजें,*

४३७ (सारंग)

जकि राही सुनि मुरली की टेर।
इत तें हौं निकसी पानी मिस तब[१] ही गाँइनि की बेर।।
मोरचंद्रिका धरें[२] स्यामघन चपल नयन की हेर।
'परमानँद' प्रभु मिलेरी[३] ! डगर मोहि[४] आवत भई है अबेर।।

४३८ (सारंग)

साँवरे मनु हर्‌यो कमल–नयन जदुराई[५]।।
चित्त चुरायो माखनचोरा।
ना जानों कहाँ गए नंदकिसोरा।।
बाल–विनोद कुँवर कन्हाई।
'परमानँद' स्वामी सुखदाई।।

४३९ (सारंग)

मैं मन मोल गोपालहि[६] दीनों।
अंबुज–बदन लालगिरिधरकौ रूप नैन निरखनि कौ लीनों
इनि आकरषि लियौ अपनी[७] रुचि
उनहि तुला धरि करि कस कीनों।
वे लै चले दुराइ[८] जतन कै
इनहिं चितै पलकनि पल छीनों।।
अब वे पलटि न देत आप तें
इनहिं कह्यो या तें कछु हीनों।
'परमानँद' प्रभु नँदनंदन सौ नौतन नेह बिधाता कीनों•

४४० (सारंग)

•• सखी री ! मिलबहु नंदकिसोर।
एक बार मोहि नैन दिखाबहु मेरे मन कौ चोर।।
जामिनि[९]–जाम गनत नहिं खूटत क्यों पाऊँगी भोर।
सुनि री सखी ! अब कैसें जीजै सुनि तमचुर–खग–रोर

---

१. जबही (इ. घ.), २. मुकुट बिराजत, सीस बिराजत, ३. खिरक में जातें भई अबेर
४. में (इ. ग. घ. ङ. छ. ज.), ५. ब्रजराई (क. ग. ज.), लाल जदुराई
६. गोपालै (ङ. छ.) ७. अपने मन (ज.) ८. चुराइ (ङ. छ.)
• सूरसागर प० सं० ४१४६ पर भी साधारण अन्तर से।
•• मोहि को मिलवै (बं. ३७।२) ऐसा भी प्रारंभ है।
९. जागत गगन गनत० (बं. ३७।२)

जो पै प्रीति सत्य अंतरगति मति काहू सौं निहोर।
'परमानंद' प्रभु आनि मिलहिंगे सखी–सीस जिनि ढोर।।

४४१ (सारंग)

कैसें छूटै स्याम–सगाई।
कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ अब तौ इहै बनि आई।।
मोहन मदन मनोहर मूरति सकल काम सुख दाई।
देखत रूप अनूप स्याम कौ नैननि परै जुडाई।।
लोक–वेद की लाज तजी मैं जिनि[1] कोउ बरजहु माई!
'परमानँद' स्वामी पै जैहों मिलिहौ ढोल बजाई।।

४४२ (सारंग)

कैसें करि कीजै बेद कह्यो।
दुख कौ मूल सनेह सखी री! सो उर पैठि[2] रह्यो।।
हरि–मुख निरखत विधि–निषेध कौ नाहिं ठौर रह्यौ।
'परमानँद' प्रभु[3] केलि–समुद्र में परयौ सु लै निबह्यो।।

४४३ (बिलावल)

मोहन कौ देखत रही री!
चलि न सकति मन की गति थाकी नंदकिसोर सनेह गही री!
अपने भवन तें कुँवरि राधिका नील[4] पटंबर पहरि चली री!
खेलत बीच मिले मनमोहन[5] नंदगाँउ साँकरी गली री!
स्यामा विचित्र नवल नागरी कमल–नयन की अति प्यारी री!
'परमानँद' स्वामी रति–नागर चितै बान मनसिज मारी री

४४४ (गौरी)

कहा करौ जो हौं मदन–जगाई।
चारि जाम निसि बैठी जागों मन उहँई जहाँ कुँवर कन्हाई
पाँच बरस के स्याम मनोहर जमुना–तीर खेलत देखि[6] आई
तनक भनक मेरे कान परी तब कहत सुनी नँदराइ[7] दुहाई

---

१. *जो कोउ (क.)*
२. *बैठि (इ.), ३. प्रेम–सागर में गिरयो सु लीन भयो।*
४. *नीलांबर तन पहरि (इ. घ.)*
५. *नँदनंदन (क.)*
६. *लखि, ७. जब नंद–दुहाई (इ. घ)*

छिनु बाहिर छिनु भीतर आऊँ प्राची दिसि जोवति मेरी माई !
'परमानंद' भोर कब है है उहँई[1] जाउँ उठि बिनु हि बुलाई।।

४४५ (गौरी)

•बन्यो आली ! माधौ सौं सनेहरा।
जैहों तहाँ जहाँ नँदनंदन राज करौ इहि गेहरा।।
अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियौ[2] समर्पनु देहरा।
'परमानंद' चली भीजत ही बरसनि लाग्यो मेहरा।।

४४६ (गौरी)

मन जु पराएँ बस पस्यौ नैननि के घालें।
स्याम–धाम में चुभि रह्यौ पस्यो गरुएँ पालें।।
निकसत कठिन कहा करौ समुझायौ न मानें।
कमल–पंक[3] में गडि रह्यौ सुखु–दुखु नहिं जानें।।
सुख पायौ श्रीमुख[4] देखें ससि[5] बदन लुभानौं।
'परमानंद' उपज्यौ जहाँ फिरि ताहि समानौं।।

४४७ (गौरी)

••पिय–मुख देखत ही पै रहिये।
नैननि कौ सुख कहत न आवै जा कारन सब सहिये।।
सुनहु गोपाललाल ! पाँइ लागौ भली पोच लै बहिये।
हौं आसक्त भई या रूपै बडे भाग तैं लहिये।।
तुम बहु–नाइक चतुर–सिरोमनि मेरी बाँह दृढ गहिये।
''परमानँद' स्वामी मनमोहन तुमहीं तें निरबहिये।।

४४८ (गौरी)

हरि सौं एकरस प्रीति रही री !
तन–मन प्रान समर्पनु कीनौं अपनौ नेम ब्रत लै निबही री

---

१. व्हाँ (इ.)
• बन्यो है आली (क.) बढ्यो है (इ. ग. घ. ज.) से भी प्रारंभ हैं।
२. सुत–पति छाँड्यो देहरा (क)
३. नैन में चुभि रह्यो
४. आनंद भयो देखि बदन लुभ्यानों (बं. ११६।१)
५. सखि ! (क. ङ छ.)
•• प्रीतमु देखत (ख) गिरिधर देखत (बं. ३७।३) से भी प्रारंभ है।

प्रथम भयो अनुराग दृष्टि तें
मानहुँ रंक निधि लूटि लई री !
कहत सुनत चित और[1] न कीनौ
इहै लगन जिय[2] पैंड गही री !
मरजादा ओलंघि सबनि की लोक वेद–उपहास सही री !
'परमानंददास' गोपिनि की प्रेम-कथा सुक व्यास कही री !

४४६ (गौरी)

प्रेम की पीर सरीर न माई !
निसि–बासर जिय रहत चटपटी इहि धकधकी न जाई।।
प्रबल सूल रह्यौ न जात सखी री ! आवै रोइ न गाई।
कासौं कहौं मरम की माई ! उपजी कौन बलाई।।
जो कोउ खोजै खोज न पइयतु ताकौ कौन उपाइ।
हौं जानति हौं मेरे मन की लागी है कछु बाइ।।
पाछें लगे सुनत 'परमानँद' हरि–मुख मृदु मुसिकाई।
मूँदि आँखि आए पाछे तैं लीनी कंठ लगाई।।

४५० (कल्यान)

तातें माई ! भवन छाँडि बन जइयतु[3]।
अँखि रस कन-रस वत-रस सब-रस नंदनँदन में पइयतु।।
कर–पल्लव गहि[4] कंध[5] बाहु धरि संग मिलें[6] जसु गइयतु
रास–बिलास विनोद महा[7] सुख माधौ के मन भइयतु।।
इहि[8] सुख सखी कहत नहिं आवै देखत दुख बिसरइयतु
'परमानँद' स्वामी के[9] संगम आनँद प्रेम बढइयतु।।

४५१ (हमीर)

• चितै–चितै चित चोर्‍यो री माई ! बाँके लोचन नीके।
वह मूरति खेलति नैननि में लाल भाँवते जी के।।

---

१. अनत न (इ. घ.) २. उर (इ. घ.) ३. जैये, पैये, गैये, भैये आदि।
४. धरि (ग. ज.), ५. कंठ बाहु दै संग० (इ.), ६. लिएँ (ङ. छ.) मिलै गुन
७. विविध सुख (क.ख के अतिरिक्त) अनूपम
८. देखें बनें कहत नहिं आवै मान दुःख (बं. ७०।१०)
और कहा कहौं सुनि मेरी सजनी ! दारुन दुख० (बं. ११३।६)
९. कौ संगम भाग बडे तें पइयतु,
के संगम मिलि रस–सिंधु बढइयतु (बं. ११३।६)
• माई री ! बाँके लोचन नीके (ख.) से भी प्रारंभ है।

एक बार मुसिकाइ चले सब हृदय गडे गुन पी के।
'परमानँद' प्रभु[१] आनि मिलावौ प्रौढ बरस एती के।।

४५२ (कानरौ)

मैं अपनों मन हरि सौं जोस्यो।
हरिसौं जोरि सबनि सौं तोस्यो।।
नाँच नचौं तब घूँघट कैसौ लोक–लाज डरु–फटकि[२] पछोस्यो[३]
आगें पाछें सोच मिट्यौ सब माँझ हाट[४] मटुका सौं[५] फोस्यो
कहनौं होई सु कहौ सखी री ! कहा भयौ काहू मुख मोस्यो
परमानँद' प्रभु लोक हँसनि[६] दै लोक–वेद सौं तिनुका तोस्यो•

४५३ (आसावरी)

जा दिन तैं आँगन खेलत देख्यो जसोमति[७] कौ पूतु री !
तब तैं गृह सौं[८] नातौ टूटौ जैसें काचौ सूतु री !
अति बिसाल बारिज-लोचन राजत[९] है काजर की रेख री !
रच्छा[१०] दै मकरंद लेत मानौं अलि ग्वालिनि के भेष री।।
राजत हैं दोइ[११] दूध की दँतियाँ जगमग-जगमग होति री !
मानहुँ मकरत–मंदिर में रूप–रतन की जोति री !
स्रवननि उत्कंठा रही जब बोलत तुतराइ री !
मनहुँ कुमुदिनी कामन पूजी पूरन इंदुहि[१२] पाइ री !
'परमानंद' देखि सुंदर तन आनँद उर न समाइ री !
चले प्रबाह नयन–मारग ह्वै का पैं रोके जाइ री !

४५४ (गौरी)

कोऊ माधौ लेइ माधौ लेई बेचति काम–रस।
दधि[१३] कौ नाउँ कहि न आवै परी जु प्रेमबस।।

---

१. कों (ख.)
२. पटकि (छ.), ३. पिछोरयो (इ. छ.)
४. बाट (ग. ज.), ५. लै (ख के अतिरिक्त)
६. कहन (इ.)
• सूरसागर प० सं० २२७६ पर भी साधारण अन्तर से।
७. जसोदा (च), ८. कौ (इ.) तें (छ.)
९. रंजित (इ) राजित (क. घ), १०. रक्षा (क)
११. द्वै (ग. ज.), १२. चंद (ग. ज.), १३. गो–रस के हेत आवै परी

गो–रस बेचनि चली वृंदा[1] जु वन माँझ।
हरि के स्वरूप भूली परि जु गई साँझ।।
बिरह–ब्याकुल भई बिसरि गयो है धामु।
'परमानंद' प्रभु जगत–पावन सुनि नामु।।

(गौरी)

४५५

प्रीति तौ एक हि ठौर भली।
इहऽव कहामति चरन–कमल तजि फिरै जु चली–चली।।
ते जानें जे सब बिधि नागर सार–सार–ग्रही लोग।
पायौ स्वाद[2] मधुर रस लोभी स्याम–धाम–संजोग।।
'परमानंददास' गुन–सुंदर नारदादि मुनि ज्ञानी।
सदा बिचार–विषय–रस–त्यागी जसु गावत मधु बानी।।

(सारंग)

४५६

मदनगोपाल के रंग राती[3]।
गिरि–गिरि परति सँभार न तन की अधर–सुधा रसमाती[4]
वृंदावन कमनीय सघन बन फूली चहुँदिसि जाती।
मंद सुगंध बहे मलयानिल अति जुडाति मेरी छाती।।
आनँद–मगन रहति प्रीतम–सँग दिवस[5] न जानति राती।
'परमानंद सुधाकर हरि–मुख पीवत हू न अघाती।।

(सारंग)

४५७

• अपने लाल के रंग राती।।
जा दिन तैं कटि-बसन पलोट्यो ता दिन तैं संग जाती।
बन झूँडे झूँडे बन तर हरि सुरत संग ही खाती।।
माता–पिता जनम के दाता नांहिन करम–सँघाती।
'परमानँद' अँग–अँग नागर तज्यौ न बाल–सँघाती।।

(गौरी)

४५८

मुरली कौऽब बजावनहारौ कहे धौं माई ! कहाँ रह्यो[2]।
नेंसकु[3] बदन दिखाइ मुकुंदै बिरह न जातु सह्यो।।

---

१. वृन्दावन माँझ, २. सार (छ.)
• गिरिधरलाल के... से भी प्रारंभ है
३. राची (बं. २७।४), ४. माची (बं. २७।४), ५. द्यौस (क.)
• मोहनलाल, मदनगोपाल से भी प्रारंभ हैं।
६. गयो., ७. नेंकु न बदन (क. ग. घ. ङ. ज.)

सबहिं गोपिनि कै प्रीति एकरस हृदै सनेह गह्यो।
ऐसी भक्ति नंदनंदन की पुन्यनि पुंज लह्यो।।
आजु गहर लाग्यौ गो–चारन बासर तौ निबह्यो।
रजनी अधिक गई 'परमानँद' लोचन नीर बह्यो।।

४५६ (सारंग)

माई ! हौं अपने गोपालहि गाउँ।
सुंदरस्याम कमल–दल–लोचन देखि–देखि सुख पाउँ।।
जे ज्ञानी ते ज्ञान बिचारौ जे जोगी ते जोग।
कर्मठ होइ सु[1] कर्म विचारहू जे[2] भोगी ते भोग।।
कबहुँक ध्यान धरत पद–अंबुज कबहुँ बजावत बेनु।
कबहुँक खेलत गोप–वृंद सँग कबहुँ चरावत धेनु।।
अपने अंस की मुगति सजी है माँगि लियौ संसार।
'परमानँद' गोकुल मथुरा मँहि उपज्यौ इहै बिचार।।

४६० (आसावरी)

जद्यपि करि जानति हों मानु।
मुरली–धुनि सुनि गए हीं बनै मोहिं उहाँ ई रहतु मेरौ[3] कानु
नेंकु परसु जिनि हरि सौं कीनौं ताहि रुचत क्यौं आनु
सुनि री सखी ! मोहि क्यों बिसरतु जिनि पायौ रति दानु
सब चतुराई मेरी बिसरि जाति है जबहि करत कल गानु
'परमानँद' स्वामी रति–नागर जाननि हू में जानु।।

४६१ (आसावरी)

साँवरौ बदन देखि लुभानी।
चले जात चितयो फिरि मो तन तब तें संग लगानी।।
वे उहि घाट पिबावत गैयाँ हौं इततैं गई पानी।
कमल–नयन उपरैना फेर्‌यो 'परमानंद हि जानी।।

४६२ (गौडौ)

जाऊँगी वृंदावन भेटोंगी गोपाल[4]।
देखोंगी नयन भरि स्याम-तमाल[5]।।
कालिंदी – तट चारत धेनु।
संग सखा बजावै[6] मृदु बेनु।।

---

१. ते (इ. ग. घ. ज.), २. भोगी होइ सो भोग, ३. मेरे (क. ख. के अतिरिक्त)
४. गोपालै, ५. तमालै, ६. बजवत

मोर – मुगट गुंजा – अवतंस।
दसन बसन कूजति[1] कल हंस।।
'परमानँद–प्रभु गोधन[2] पाल।
लीला–सागर मदनगोपाल[3]।।

४६३ (सोरठी)

माई ! हौं कहा करौं न भावै मोहि घर कौ आँगनु।
कठिन ठगौरी मेली नंद के नंदनु।।
तरनि–तनया–तीर खेलत स्याम सरीर।
लोचन भरि देखौं[4] रोहिनी–नंदन–वीर।।
कैसें करि भवन जाऊँ मन नहिं लागै ठाऊँ।
मोहन–मूरति की हौं बलि–बलि जाऊँ।।
निदंत सकल लोक-लाज कुल-सील जाई।
'परमानँद' स्वामी सौं अति रति बनि आई।।

४६४ (रामग्री)

• हरि जू कौ दरसन भयौ सवेरौ।
बहुत लाभ पाऊँगी माई ! दह्यौ बिकै है[5] मेरौ।।
गली साँकरी एक जने की भटकि[6] भयौ भटभेरौ।
अंक दै चलौ सयानी सुंदरि हरि[7] कौ बदन फिरि हेर्‌यौ।।
प्रातहि[8] मंगल भयौ सखी री ! है सब काज भलेरौ।
'परमानंद' प्रभु अचिंते[9] भेटे भव–सागर कौ बेरौ।।

४६५ (बिलावल)

कोट हू तें कठिन भ्रकुटि की ओट।
सर हू तें सरस सबद की चोट।।
जानें चतुर न जानें बोट।
प्रेम के फंद[10] कहा बड–छोट।।
'परमानंद – प्रीति की जोट।
अब कहाँ जैवौ परे[11] बगरोट

---

१. कूजै (इ. घ.), २ त्रिभुवन–पाल, ३. गिरिधर लाल (क), ४. देख्यो (छ. घ. च.)
• लाल कौ (बं) ७।४) से भी प्रारंभ है
५. बिक्रैगौ, ६. भटू भयो, ७ कमलनैन ८. भोरै मंगल
९. ग्वालिनि (बं. ११।६) मिले अचानक
१०. बंद (च), ११. पराए बगरोट (छ)

४६६ (गौरी)

•ह्याँ तौ हरि की–सी भाँति बजावत गौरी।
हौं इहि घाट–बाट गृह[1] तजि कैं सुनत बेनु धुनि दौरी।।
गई हौं तहाँ जहाँ निकुंज बन अरु बैठिक[2] सिल चौरी।
देखी मैं पीठ डीठ द्रुम–ओझिल फरकत पिछौरी।।
लीनी हौं[3] बोलि तहाँ मेरी सखी री ! देखि बदन भई बौरी
'परमानंद' नंदनंदन तोहि[4] मिलिहैं री ! भरि कौरी।।

४६७ (बिलावल)

आछे–आछे बोल गडे।
कहा करौं[5] उर तै नहिं निकसत स्याम–मनोहर चतुर बडे।।
मेरें नेंक आउ री भामिनि ! रहसि बुलावत रूख चढे।
'परमानँद' स्वामी रति–नागर प्रीति बढावन कुँवर लडे।।

४६८ (सारंग)

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुनु जसोमति ! सँग छाँडि आपुनौ कुँवर जगाइ दैनि हौं आई।।
सुनि पिय–बचन बिहँसि उठि बैठे अंतरजामी कुँवर कन्हाई
मुरली के सँग हुती मेरी पोंहोंची दे राधे ! वृषभानु दुहाई।।
मैं नाहिंन चित लाइ निहारह्यौ चलहु संग ठौर देहुँ बताई
उमगि प्रीति भई चित अंतरगत दोउ जन पढे माई ! एक चतुराई।।
पायौ अपनौ परम मनोरथ घर बैठें जसोमति बौराई।
'परमानंददास' इहि जानी जिनि इहि केलि जनमु भरि गाई।।••

• *हरिजू राग अलापत गौरी (बं. १५।२) से भी प्रारंभ है*
१. *घर (ग. ज.)*
२. *अरुबे निकसेउव चोरी (च.) बैठे किसलय चोरी (ग. ज.)*
३. *बोलि तहाँ सब सजनी (बं. १५।२)*
४. *मोहि मिले प्रेम भरि (बं. १५।२)*
५. *कहों (ङ.)*
•• *सूरसागर पं० सं० १८०४ पर भी है*

४६६ (धनाश्री)

सखी री ! जीजति हौं मुख हेरें।
को मेरौ सगौ न हौं काहू की कहति सबनि सौं टेरें।
जहाँ मन हठयौ सोई भलें करिहौं कहा भयौ कहे तेरें।
'परमानंद' हिलग[1] की बातें निबरत नाहिं निबेरें।

४७० (सारंग)

सखी री ! लोभी मेरे नैन।
बिनु देखें चटपटी सी लागति देखें उपजत चैन।।
मोर–मुकट काँछे पीतांबर सुंदर मुख के बैन।
अंग-अंग छबि कहि न परति है निरखि थकित भयौ मैन।।
मुरली धुनि ऐसी लागति है चितवै खग मृग धैन।
'परमानँद' प्रेमी के ठाकुर वे देखौ ठाढे ऐन।।

४७१ (गौरी)

मोहन मोहिनी पढि मेली।
देखत ही तन दिसा भुलानी को घर जाइ सहेली !
का के मात तात अरु भ्राता को पति नेह नबेली ?
का की लोक–लाज डरु कुल ब्रत को बन भ्रमति अकेली ?
तातें कहति मूल मति तोसों एक संग मिलि खेली।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन स्रुति मरजादा पेली।।

४७२ (सारंग)

देखों को मन राखि सकै री !
वह मुसिकनि वह चारु बिलोकनि अबलोकत दोउ नैन छकै री
जिनि कौ अनुभव कबहू नांहिन ते घर बैठी न्यात बकैरी !
जिनि न सुनी मुरली वह काननि ते पसु-पंछी-मृग बिथकै री !
बिनु देखें अब रह्यौ न जाई सुँदर बदन कुटिल अलकै री !
'परमानँद' प्रभु इहै अवस्था जे हरि–रूप निरखि अटकै री !

४७३ (सारंग)

या ब्रत[2] तैं कबहूँ न टरौं री !
बंसीबट मंडप बेदी रचि कुँबर लाडिलौ लाल बरौं री ?

---

१. लगन (इ.), २. ब्रज (ङ चत्र.),

इत जमुना उत मानसरोवर भाँवरी बीच फिरौं[1] री !
बरसानौ[2] प्यौसार हमारौ अपजस तें कबहूँ[3] न डरौं री !
कुंज कुटी निज धाम हमारौ आनँद[4] उमगि[5] भरौं री !
'परमानँद' प्रभु अँग[6] अँग नागर
कुँवर कान्ह[7] सँग केलि करौं री।।

४७४ (सारंग)

हौं लोभी लटकनि लाल की।
मुरि मुसिकानि आनि उर–अंतर निकसत नहिं सरसाल की
बाँकी पाग राग मुख सारँग मधुप–लपट लट माल की।
सखा सुबल के अंस बाहु दिएँ बलि गई दैन उगाल की
चंपक–दाम बीच उर चमकति[8] स्रक या सुमन गुलाल की
चंचल दृष्टि समर की सेना डोलनि कमल कर नाल की।।
उनि मेरौ सरबसु चोर्‍यो री ! अरु लई चाल मराल की
अब इहि देह दूसरौ न छुइहै 'परमानँद' गोपाल की।।

४७५ (सारंग)

ता दिन तैं उहाई मन मोर।
जा दिन तैं मेरे इन स्रवननि सरस सुनी मुरली की घोर।।
देह–दसा तन की सुधि बिसरी चितवत स्याम–मनोहर ओर
मनहुँ कछु पढि डार्‍यौ मेरे सिर कान्ह कुँवर नागर चित–चोर।।
एक दिवस ठाढी ब्रज–बीथिनि फरहरात पीतांबर–छोर।
'परमानंद' चुभी अंतरगति चितवनि तिरछी लोचन–कोर।।

४७६ (बिलावल)

कोउ मेरे आँगन ह्वै जु गयौ।
झलकति ज्योति बदन की माई ! सपनों सौ जु भयौ।।

---

१. *परों री ! (क)*
२. *वृषभान–गाँउ प्यौसार हमारौ (क)*
३. *क्योंहू (क)*
४. *उमगि उमगि रस सिंधु भरों री ! ५. उतंग (ग)*
६. *कुँवर लाडिलौ स्यामसुँदर सँग केलि०*
७ *स्याम (ग. ङ. छ.)*
८. *चमकनि (घ)*

हौं दधि मेलि माट सुनु सजनी ! लैनि गई जु मथानी।
कमल[1] नयन की नाईं चितयो उहि[2] मूरति मैं जानी।।
कर[3] नहिं चलत देह–गति थाकी बहुतै दुख मैं पायौ।
'परमानँद' चरत गहि रहती कत मेरें हुइ आयौ।।

४७७ (धनाश्री)

चलि री ! नंदगाँउ जाइ बसिए।
खरिक खेलत ब्रजचंद सौं हँसिए।।
बसत बठौना[4] सब सुख माई।
कठिन[5] इहै जो दूरि कन्हाई।।
माखन चोरत दुरि–दुरि देखौं।
सजनी ! जनम सुफल करि लेखौं।।
जलचर लोचन छिनु–छिनु प्यासा।
कठिन प्रीति 'परमानँद दासा।।

४७८ (परज)

जित देखौं तित कृष्ण–मनोहर दूजौ दृष्टि परै री !
चित्त–सुहावनि छबि सुँदर की रोम–रोम रस भरै री !
सिव बिरंचि जाहि ढूँढत फिरें सो मन मेरे प्ररै री !
निसि–दिन राची गुन गोविंद के और उपाय न करै री
जा कारन हौं अटकि फिरी जग में सो पायौ निज घरै री।
'परमानंद' लह्यौ सुख दरसन चित्त-कारज सब सरै री।।

४७९ (बिलावल)

जब नँदलाल नैन भरि देखे।
इकटक रही सँभार न तन की मोहन सूरति पेखे।।
स्याम बरन पीतांबर काँछे अरु चंदन की खौर।
कटि किंकिनी कल राव मनोहर
सकल त्रियन के चित के चोर।।

---

१. *भाजन फोरि ढोरि दधि भाजे संक न काहू की आनी (च.)*
२. *गति तब ही मैं जानी*
३. *चलि नहिं सकति तन की गति थाकी (बं १२४।२)*
४. *बठैन सबै (ग),*
५. *एक कठिन दुख दूरि०*

कुंडल–झलक परति गंडनि पर आइ अचानक निकसे मोर
श्रीमुख–कमल मंद–मृदु मुसिकनि लेत करषि मन नंदकिसोर
मुक्त–माल राजत उर–ऊपर चितए सखी जबहिं इहिं ओर।
'परमानंद' निरखि अँग–सोभा ब्रज–बनिता डारति तृन तोर

४८० (जैति कल्यान)

आँखिन आगे हू स्याम मूँदेहू स्याम
कहनि लगी गोपी कहाँ गए स्याम।
आदि हू स्याम अंत हू स्याम रोम–रोम रमि रह्यौ काम।।
मधुवन आदि सकल बन ढूँढ्यो ढूँढति फिरति कुंज नव धाम
'परमानंददास' कौ ठाकुर अंग – अंग अभिराम।।

४८१ (गौरी)

है मोहिनी कछु मोहन–पहियाँ।
मोहन मुख निरखति हौं ठाढी
आइ अचानक गही मेरी बहियाँ।।
जो भायौ सों कियौ अपनी रुचि
मैं सकुचानी[1] कीनी नहिं नहियाँ।
'परमानँद' प्रभु स्याम गए[2] चलि
ए छबि चुभि जु रही मन–महियाँ।।

४८२ (मल्हार)

नंद कौ लाडिलौ लला !
कब देखौं कब मिलौं अंक भरि कंदर्प कोटि कला।।
साबन मास बद है बन चातक नान्है बूँद झला।
ता प्रीतम बिनु गनत न खूटहिं बासर बरस पला।।
कहा करों मनु रहै न राख्यौ बिरहा हियौ जला।
'परमानंददास' इहि औसर हरि–बिनु कौन भला ?

४८३ (सारंग)

मारगु जात नेंकु फिरि चितयौ तबतैं मृगनि चौकरी भूली
उघस्यौ मुख सुभाइ घूँघट–पट सकुचे कमल–कुमुदिनी फूली

---

१. *सकुचनि,*
२. *मनोहर (क)*

भौंह देखि मनमथ–मन काँप्यो छूटि गयो धनुष भुजा भई लूली।
'परमानँद' प्रभु पाँइ पलोटति हुती जु गरब हिंडोरे झूली

४८४ (सारंग)

ठाढौ एहि चितचोर कन्हाई !
लिए जात कत सरबसु मेरौ नेंकु चितै तोहि नंद–दुहाई।।
मृदु मुसिकाई डारी है ठगौरी बंसी की फंसी उरझाई।
तयौ जात है मन माखन ज्यों बिरह–अग्नि उर दंस लगाई
इतनी सुनत जसोदा–नंदन प्रेम–लपेटी बात सुनाई।
'परमानंद' प्रभु अपनी प्यारी कौं धाइ लाल हँसि कंठ लगाई

४८५ (सारंग)

नैननि तें न्यारे जिनि टरौ।
परम सुगंध मृदुल सीतलता पानि कमल उर पर धरौ।।
तुम तौ प्रान–जीवन–धन मिलि मोहन आरति हरौ।
मात पिता पति लोक बिराने सहि न सकौ सो जरि मरौ
गाँइ दुहावनि कें मिसु आवति प्राननाथ तुम जिनि डरौ।
'परमानंददास' की जीवनि मेरी दोहनी दूध भरौ।।

४८६ (सारंग)

मोहि लई रतनारे नैन।
स्रवन सुनत सब सुधि–बुधि बिसरी लुबधी मधुरे बैंन।।
कमलनयन सखि ! खरिक तें आवत
बात एक हँसिकै कही ऐन।
'परमानँद' प्रभु नंद–दुलारे मेरी गाँइ कही दुहि दैन•

४८७ (सारंग)

अब हौं कहा करौं री माई !
नंदनँदन बिन देखे सखी री ! पल–छिनु रह्यौ न जाई।।
घर में मात–पिता मोहि त्रासैं अरु कुल–लाज लजाई।
बाहिर मुख सब मोरि हँसत हैं स्याम–सनेहनि आई।।
दिन अरु रैनि घरी अरु पल बिनु घर अँगना न सुहाई
'परमानंद' लाल गिरिधर बिनु छिनु–छिनु कलप बिहाई।।

• *'मोहि लई नैननि की सैन' आरम्भ से सूरसागर प० सं० १३६० पर भी*

४८८ (विभास)

जइए वह देस जहाँ नँदनंदन भेटिए।
निरखत मुख–कमल–कांति विरह–ताप मेटिए।।
सुंदर रूप सुधा नैंननि पुट पीजिए।
लपट लावन मिस रहति अचयें अचयें जीजिए।।
नख सिख मृदु अंग–अंग कोमल कर परसिए।
अरु अनन्य भाव सौं मन–क्रम–बच सरसिए।।
रास हास भुव–विलास लीला सुख पाइए।
भक्तनि के जूथ माँझ रस–निधि अवगाहिए।।
एही अभिलाष अंतरगत प्राननाथ पूरिए।
सागर–करुना उदार त्रिविध ताप चूरिए।।
छनु–छिनु पल कलप भरी बीतत अति भारी।
'परमानँद' कलपतरु दीननि दुखहारी।।

४८९ (टोडी)

चंद मैं देख्यो मोर–मुकुट कौ।
टेढी बीन न छाँडि देहु अब सिगरी यहाँ सों सटकौ।।
देखैं लोग चबाई करिहैं इहि मेरे मन खटकौ।
जानै सास ननद बैरिनि सब बन में आजु न भटकौ।।
मोकौं पीय मिलेंगे कबही मिस जमुना–जल–घट कौ।
मिलें अपुनि कौं छेड करैगौ प्रन है नागरनट कौ।।
घर–घर डोलत खात ललकारा नांहि न काहू के बट कौ।
'परमानंद' लगी ना छूटै लाज कुआ में पटकौ।।

४९० (ईमन)

जिय की बात न जानत हौ पिय ! आप स्वारथ के गाहक।
मृदु मुसिकाई आइ आँगन ढिंग हरत परायौ मन नाहक।।
कपटी कुटिल नेह नहिं समुझत छल सौं फिरत घर घर के चाहक।
हा–हा ! निर्दई बसे प्रान मेरे 'परमानँद' मन दाहक।।

४९१ (सारंग)

नैंकु इहाँ रहौ ढोटा देहु।
जानि–बूझि चपरात हो कित करि–करि ताप सनेहु।।
कौंने हाल कियौ गो–रस कौ चलौ दिखाऊँ गेहु।
'परमानंद' प्रगट कियौ चाहति ग्वालिनि गुपत सनेहु।।

४६२ (सारंग)

तो सौं कहा कहौं सुंदरघन !
जेइ–जेइ ब्रज उपहास चलत है सुनि–सुनि स्रवन रहत मन ही मन।।
ता दिन पसु आई नोई गहि मोहि देहि धेनु बंसी बन।
उनि गही बाँहि सुभाउ आपने मैं चितई मुसिकाई बदन तन
ता दिन तैं घर–भीतर–बाहरि करत चवाउ सकल गोपी–जन।
'परमानँद' प्रभु साँच कहोंगी एहि पतिब्रत सुनौ नँदनंदन।।

४६३ (सारंग)

लाल ! यह निपट अगोचर गेहरौ।
यहाँ ही छिनकु बिरमिये बलि गई
बासर–जनित दुख मेहरौ।।
तौलौं सुख जौलौं मुख निरखौं
नख–सिख–रूप अनूप मनोहरौ।
'परमानँद' स्वामी में चैन चित
बेंनु स्रवन हरषसों हरौ।।

४६४ (धनाश्री)

ग्वालिनि ठाढी मथति दह्यौ।
या भेदै कोउ नाहिंन जानति[1] नीकैं मरमु लह्यौ।।
उलटी रई मथनियाँ टेढी बिनहि[2] नेति कर चंचल।
निरखि चंद मुख लोन्यौ काढति थकति नैन के अंचल।।
सबै विपरीत भए तिहिं औसर मंनु मुकुंद[3] हरि लीन्हों।
'परमानंद' सँभार न तन की इहै प्रीति कौ चीन्हों।।

४६५ (केदारौ)

गोविंद ग्वालिनि ढौरी लाई।
बन बंसीवट जमुना के तट मुरली मधुर बजाई।।
रह्यौ न परै बिनु देखें मोहन अलप कलप सम जाई।
निसि–दिन गोहन लागी डोलै लाज सबै बिसराई।।
उठत बैठत सोवत जागत जपति कन्हाई–कन्हाई।
'परमानँद' स्वामी मिलिबे कौं और न कछू सुहाई।।

---

१. जानैं। (छ), २. बिना मथनि कर (छ), ३. गिरिधर (ग. घ. च)

४६६ (बसंत)

सुंदर गावत बेनु–गीत बन–माला रची है पुनीत।
सखा–संग बलभद्र साथ आनंद–कंद बैकुंठ–नाथ।।
देवकी–नंदन जनम बात माया मानुस तन देवरात।
'परमानँद' स्वामी दयाल भय–भंजन भव–हरन काल।।

आसक्ति कौ वर्णन–

४६७ (सारंग)

चितैबौ छाँडि दै नेंकु राधा !
कै मिलि रसिक नंद–नंदन सौं करत काम मन[1] बाधा।।
कै बैठि रहि भवन आपने में काहे कौं बनि आवै।
मृग नैनी हरि कौ मन मोहै जब वे खरिक दुहावै।।
कबहु हाथ तैं गिरत दोहनी कबहु बिसरि जाति नोई।
कबहु वृषभ नोवत घनसुंदर को जानै कहा होई।।
तेरे नैन बिसाल काम सर आगें–आगें धावै।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन उर लागै सचु पावै।।•

४६८ (सारंग)

तेरौ कान्ह सौ मन लाग्यौ।
कहति फिरति दामोदर माधौ लोक बेद डर भाग्यौ।।
हम किनि भईं घोष की ग्वालिनि एक गाँउ मिलि बसंती।
गाढे आलिंगन दैं मिलतीं रास–केलि मिलि हँसतीं।।
सुनि री सखी ! भाग कहा बरनौं बार–बार बलि जाउँ।
'परमानँद' स्वामी मोहन कौ निकसत है मुख नाउँ।।

४६६ (सारंग)

क्यों री ! तू दिन आवति इहिं ओर ?
गो–चारन की बाट रोकि कैं ठाढी भई[2] मानु भोर।।
कै तैं स्याम नयन भरि देखे पीतांबर के छोर।
कै तैं सुनी अचानक बन में वा मुरली की घोर।।

---

१. रस (च)

• सूरसागर प० सं० १३३६ पर भी साधारण शब्दान्तर से

२. रही (क.),

कैं ते मोहन आपु बस कीने कान्ह कुँवर चित–चोर।
कै 'परमानँद' मिल्यौ चाहति है नागर नंद–किसोर।।

५००

(सारंग)

या तें दिन आवति इहिं ओर।
बदन कमल मधुकर ज्यों अटक्यौ रस–लुब्धौ[1] मन मोर।।
खरिक दुहावन जाति सखिनि सँग दृष्टि परे तिहिं ठौर।
अवलोकत तन सुधि बुधि[2] बिसरी मन करख्यो चित चोर।
पति–गृह काज सबै बिसराए नंदनँदन के छोर।
'परमानंद' मिल्यौ चाहति हौं गिरिवरधर सिरमौर।।

५०१

(सारंग)

मैं तूँ कै बिरियाँ समुझाई।
उठि उठि उझकि उझकि हरि हेरति चंचल टेव न जाई।।
छिनु–छिनु पलु–पलु रह्यौ न परै तब सहचरि ओट लगाई
कमलनयन कों फिरि–फिरि चितवति लोक की लाज मिटाई
को प्रति उत्तर देइ सखी कों गिरिधर बुद्धि चुराई।
मदनमोहन–राधारस–लीला[3] कछु 'परमानँद' गाई।।

५०२

(सारंग)

कहि री भटू ! तोहि कहा धौं भयौ।
डगमगि[4] रहति निसि[5] अरु बासर
छूटि गाँठि तें कहा धौं गयौ।।
कै तोहि मात–पिता घर त्रासैं कै काहू कछु कह्यौ।
कै जसोदा के लाल लाडिले चितै चित चोरि लयौ।।
कै तैं सुनीऽब घोर मुरुली की कै कछु पढिऽब दयौ।
'परमानँद' प्यारे मिलिवे कों तरसत है मेरौ हियौ।।

५०३

(धनाश्री)

कब की तू दह्यौ[6] धरें सिर डोलति।
झूठें ही इत–उत फिरि आवति ह्याँई आनिकैं बोलति।।

---

१. लोभी (छ.), २. सब (इ. घ.)
३. लीना (इ.), ४. उमगी (इ. घ.),
५. निसा (इ. घ), ६. लिएँ (इ.)

मौंह लौं भरी मथनियाँ तेरी[१] तोहि रटत भई साँझ।
गो–रस कौ लेवा जानति हों या ही बाखरि माँझ।।
आगै आउ बात इक बूझों कहत बुरा[२] जिनि मानें।
तेरे घर में तूँ हि सयानी और बेचि नहिं जानें।।
ता दिन तें नीकें जानति हों जा पै चित्त चुरायौ।
अंचर छाँडि दियौ राज सुनि जन 'परमानँद' गायौ।•

५०४ (गौरी)

फिर–फिर कहा हेरति है री माई !
को प्रीतम पाछें आवत है मानहुँ नंदकुमार कन्हाई।।
गो–रस बेचनि चली री ! मधुपुरी पाँइ परत नहिं आगै।
ऐसी ठगौरी मेली हो ! कौनें मन तरसत ताहि लागै।।
देखत[३] रूप चिहुँटि चितु लागौ[४] ताहि के हाथ बिकानों।
'परमानंद' प्रीति[५] है ऐसी कहा राँक कहा रानों।।

५०५ (कानरौ)

नैननि कौ टकुझकु तेरौ।
न्याँइ गोपाललाल बस कीने मोहन रूप जगत केरौ।।
बिनहीं[६] काज नंद जू के आँगन बारंबार करति फेरौ।
जानी बात बदन पहिचान्यो औरहि भाँति प्रेम घेरौ।।
उरहन के मिस भई लगनियाँ चचंल मन[७] कीनों चेरौ।
'परमानँद' स्वामी–रस अटकी बाँध्यो है सखि ! मदन–बेरौ।।

५०६ (कानरौ)

दोउ नैननि तें लायो टकुझकु।
बारंबार द्वार ह्वै झाँकति मदनगोपाल की मूरति कौतुक
जौ लौं हरि कौ स्वरूप[८] न देखति
हृदै तलाबेली ह्वै लागति[९]।
परौस–बास हमारौ तेरौ ग्वालिनि चरनकमल अनुरागति[१०]

---

१. अजहूँ (इ.), २. बिलग (ग. ज.)
• सूरसागर प. सं० १२६४ पर साधारण परिवर्तन से।
३. निरखि सरूप, ४. अटक्यो (बं. ११३।६),
५. नंदनंदनसों रति सोइ सुखी सयानों (बं. ११३।६), ६. वे ही काज (इ.ग.घ.ड.च.छ.)
७. चित (ग. ज.), ८. रूप सुरूप, ९. लागी (क. ख.), १०. अनुरागी (क. ख.)

तू नागरि और सबै[1] अयानी
अपनौ सहज सुभाव जनावति।
'परमानँद' स्वामी–रस अटकी
ताकी गीधी दिन–प्रति आवति।।

५०७ (आसावरी)

तू जिनि जाइ नंद के द्वारें तेरी[2] बात चलाई री !
खान–पान सब तज्यो साँवरे तें लियो है चित्त चुराई री !
कौन नंद का कौ सुज सजनी ! मैं देख्यो सुन्यौ न माई री !
फूँकि फूँकि हौं पाँउ धरति हौं मेरे पैंडे परें लुगाई री !
अहो सखि ! कालि गई ही ब्रज में कान्हर ढौरी लाई री !
जब तें दृष्टि परी[3] तू हरि कें तब तें कछु न सुहाई री !
अहो सखी ! तू सुनिलै बतियाँ मेरे जियकी हौं[4] न दुराईरी !
सुंदरस्याम मिलिवे के कारन नयन–बान चलाई री!
मेरे मन कौ इहै मनोरथ पैं गुरु–जन हैं दुखदाई री !•
'परमानँद' प्रभु जोपै पाऊँ मेरे तन की व्यथा[5] बुझाई री !

५०८ (सारंग)

विह्वल भई फिरति राधे जू कौन की लई।
काके विरह बदन कुम्हिलानों तन की आव गई।।
को प्रीतम ऐसौ[6] मन[7] भावत जिनि दसा दई।
मैं तन की गति ऐसी देखी कमलनि हेम–हई।।
कहा करों इक स्याम–ढिटोंना तासौं प्रीति नई।
'परमानँद' कौं आनि मिलावै हरि आनँदमई।।

५०९ (सारंग)

तनु विष गयो[8] है छहरि।
तुमारौ[9] पूत मंत्र जानतु है नेंक पठै देहु महरि !

---

१. *सब मूरख (इ. क. ग. घ. च. छ.), २. तेरिय (छ.)*
३. *परे मनमोहन (ग. ज.), ४. कहुँ न (क.),*
५. *बिथा (क.), तपत (च.)*
• *कुछ परिवर्तन के साथ सूरदास की छाप से भी (बं. २६।१२७१।६०)*
६. *एतौ (इ.), ७. जिय*
८. *रह्यो री ! (क. ग), ९. तेरौ पूतु (क. घ.)*

घिच अवसान भीरि नहिं भाँवति छाँइहु चहरि।
बोलहु गुनी गारुरी[1] गोविंद इहि बाँधिहै लहरि।।
तंतु[2] न मंतु नहि गद औषध कीजैऽब कहरि।
'परमानँद' प्रभु सुनत बात उठि चले हैं भहरि•।।

५१० (कानरौ)

सुनि री सखी ! तेरौ दोसु नहीं मेरौ पिउ रसिया।
जो देखत है सो भूलि रहत है कौन–कौन के मन बसिया।।
सो को जो न करी बस अपने जा तन नेंकु चितै हँसिया
'परमानँद' प्रभु कुँवर लाडिलौ अबही कछु भीजत मसिया+

५११ (केदारौ)

डगरि चलि गोवर्द्धन की बाट।
खेलत तहाँ मिलेंगे मोहन जहाँ गोधन के ठाट।।
सुनि री[3] सखी ! तोहि लै जु दिखाउँ[4] सुंदर बदन–सरोज
कमल–नयन के एक रोम पर बारों कोटि मनोज।।
तू[5] पाहुनी अपूरब आई आन गाँउ की ग्वारि।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु दीजै वारि।।

५१२ (सारंग)

बन–बन माधौ की डोलनि।
इत चातक इत कोकिल कूजित इत मोरनि की बोलनि।।
कबहुँ पीतपट लेत हाथ कै बारंबार फिरावत।
कबहूँ कहत लागि तू मो सौं बाँह डफोरि बुलावत।।
आपुनि हँसत हँसावत औरनि नौतन भेषु बनावत।
'परमानँद' प्रभु बालक–लीला सबनि गोपाल जनावत।।

---

१. गाररू (क.)
२. जगै न मेरु बैरु करि खाई साँची है नागरि।
डसी भुवंगम प्रेम 'परमानंद' गयो है डगरि।।(क.)
• सूरसागर प० सं० १३६८ पर भी इसी तुक से भाव–साम्य, पद–साम्य के साथ।
+ कृष्ण जीवन लच्छीराम' की छाप से भी मिलता है।
३. चलि री ! (क.) ४. मिलाउँ (क.)
५. पाहुँनी एक,

५१३ (सारंग)

माधौ निवसत जमुना–कुंज।
बाल–केलि बल्लव–सँग बिहरत चारत गोधन–पुंजं।।
विकसित तरुन अरुन अंबुज–दल लोचन विमल विसालं
मृगमद–तिलक सलिल मुख कुंतल बरुहपीड बनमालं[1]।।
कुंडल लोल कपोल पीतपट नील–जलद–तन रूपं।
धातु प्रबाल स्रवन गुंजाफल भ्रमित भेष अनुरूपं[2]।।।
बंस विषान अघ्न दधि ओदन धरम करम सिसु–हासं।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन माया–मनुज–बिलासं।।

५१४ (सारंग)

गोपाल दिखाई दै–दै जात।
फिरि आवत वृषभानु के द्वारें सकुचत कहा लजात।।
मेरौ मन तुम ही सौं बाँध्यौ टूटत कैसें नात।
अब तौ आइ बनी नँद–नंदन नैननि नैन मिलात।।
जहँ संकेत रच्यौ मनमोहन तहाँ सनेह की बात।
'परमानँद' प्रभु[3] हौं जानति हौं खेलनि कौ अकुलात।।

५१५ (हमीर)

माई री ! बन–क्रीड़ा मोहि भावै।
गिरिधर–संग निमिष नहिं छाँडों कबहूँ मधुर सुर गावै।।
कबहुँक नैन सौं नैन जोरिकै बातनि चित्त चुरावै।
हँसि मुसिकाइ कंठ कर सौं लै रीझि कैं हृदै लगावै।।
कबहुँक नैननि मूँदि ध्यान धरि रूप–सुधा–रस प्यावै।
कबहुँक रहसि बिलास करत हरि बन–माला पहिरावै।
इहि सुख सखी ! कहौं अब कैसै कैसेंई उर में न आवै।।

साक्षात् स्वामिनी जू के वचन–

५१६ (सारंग)

• मदनगोपाल बलैया लैहों।
वृंदा–विपिनि तरनि तनया तट
चलु ब्रजनाथ ! आलिंगन दैहों।।

---

१. मनि मालं (इ. घ.), २. अनूपं, ३. स्वामी हौं जानति खेलनि (ग. ङ. छ.)
• अहो नँदलाल. से भी प्रारंभ

सघन निकुंज सुखद रति–आलै
नव कुसुमनि की सेज बिछैहों।
त्रिगुन[1] समीर पंथ पग बिहरत
मिलि तुम[2] संग सुरत–सुख पैहों।।
अपनी चोंप तैं जब बोलहुगे तब गृह छाँडि अकेली ऐहों।
'परमानँद' प्रभु चारु बदन कौ उचित[3] उगार मुदित ह्वै खैहों

५१७ (सारंग)

तुमहिं जु चाहति कानन डोली।
देखि गोपाल ! अवस्था मेरी स्रम–जल–भीनी[4] चोली।।
हौं अपने गृह–काज करति ही बैनु–ब्याज कत[5] बोली।
तुम अटपटे मनोहर नागर ! हम अहीरि मति भोली।।
ऐसी बहुरि करहु जिन बलि जाउँ[6] ओडति हों ओली
'परमानँद' प्रभु प्रेम जानि कैं तमकि कंचुकी खोली।।

५१८ (बिलावल)

तैं मेरी लाज गँवाई हो दिखनौते[7] ढोटा!
देह विदेही ह्वै गई मिटि घूँघट–ओटा।।
कमल–नयन तुम कुँवर हौ हलधर तें छोटा।
छैल छबीले रूप में भई लोटकपोटा।।
श्रीगोपाल तुम चतुर हौ हम मति की बोटा।
'परमानंद' सोई जानिहै जाहि प्रेम की चोटा।।

५१९ (कानरौ)

तिहारे बदन के हौं रूप राची।
आउ गोपाल ! खेलौ मेरे आँगन
इहिं मिस लाल प्रीति करि साँची।।
अबकें दुराएँ क्योंऽब दुरति है प्रगट भई सब गोकुल माँची
घर–घर घोन[8] मथन सबहिनि कें अकेली मात जसोदा बाँची
ऐसी करि सुंदर ब्रजनाइक मरकतमनि कंचन ज्यों पाची
'परमानँद' प्रभु लोक हँसनि दै हौं तौ दृढ़ नाहिंन मति काची

---

१. प्रफुलित कुंज–कुंज द्रुम वेली० (बं. १३०।२), २. संगम–सुख लैहों (बं. १३०।२), ३. उछिष्ट (क), ४. भीजी (ग. च. छ.), ५. कित, ६ गई (घ), ७. जसुमति के० (बं. १६१।१), ८. घेर (ग. ङ. छ.)

५२० (कानरौ)

•तिहारी बात मोहि भावति लाल !
बार–बार जसोमति के भवनें[1] यह सुननि हौं आवति लाल
पार–परोसनि अनख मरति[2] हैं औरै कछू लगावति लाल
ताकी साखि विधाता जानें जिहि लालच उठि धावति लाल
दधि–मंथन अरु गृहकौकारज तिहारे प्रेम बिसरावति लाल
'परमानँद' प्रभु कुँवर भाँवतौ[3] तुम देखें सचु पावति लाल।।

५२१ (कानरौ)

माधौ ! भली जु करत मेरे द्वार ह्वै वन पाँउ धारत।
साँझ सवार देखति हों हियौ भरि
प्रीति के भूखे मेरे लोचन आरत।।
बालतया में नागरता नित–प्रति[4]
उठि चित लगनि बिचारत।
यह जु भली गृहपति नहिं जानत
प्रीतम–मिलन[5]–हित गोसुत चारत।।
कुनित बेनु रव खग–मृग मोहे मुनि–मन[6] समाधि टारत
'परमानँद' प्रभु चलत ललित गति
बासर–जनित ब्रज–ताप निबारत।।

५२२ (आसावरी)

गोपाल ! तेरी मुरली हौं मारी।
सबद बान बेधी चित–अंतर नंदकिशोर मुरारी।।
कहति राधिका सुनु जगमोहन ! तुम्हारी दासि लचारी।
रूप निधान स्यामघनसुंदर या बंदसि पर वारी।।
रह्यौ न परै कनक–मंदिर में आई बनहिं[7] सवारी।
'परमानँद' स्वामी सुख–कारन सही है लोक की गारी।।

• *तुम्हारी (क.) से भी प्रारंभ है*
१. आँगन में (छ), २. करति (ग. ङ. च. छ.)
३. लाडिले निरखि बदन सचु०
४. उठि प्रति छिनु लगन (क),
५. खेलन रस गोसुत
६. मनसा समाधै, ७. बनहुँ (क. ग.)

५२३ (विभास)

हौं पराभात समै उठि आई नंदनंदन[1] देखनि तुम्हरौ मुखु।
हौं[2] दधि बेचनि चली री ! मधुपुरी लाभ होइ मारग पाऊँ सुखु।।
करत कलेऊ स्याममनोहर नेंकु चितै कीजै हम तन रुखु।
तुम सपनें मोहि मिलिकै बिछुरे कहा[3] कहौं रजनी–जनित दुखु।।
प्रीति जु एक स्यामसुंदर सौं इहि मिस करि सब बात जनाई
'परमानंददास' उहि नागरि नागर सौं मनसा अरुझाई।।

५२४ (सारंग)

मानहुँ नाहिंन प्रीति हियें।
बाईं दाहिनी दैऽब चलत हौ नीचे नैन कियें।।
रूखे रहत बचन नहिं बोलत आवत मौन दियें।
ऐसी भई अनत रुचि उपजी काहू के सिखयें।।
सुमिरत बाल–दसा की बातें मन में घालि सियें।
'परमानँद' प्रभु कृपा तजहु जिनि कूरम द्रिष्टि कियें।।

साक्षात्–भक्त प्रार्थना–प्रभु प्रति–

५२५ (सारंग)

कहति है राधिका अहीरि।
आजु गोपाल हमारें न्योंते परसि जिबाऊँ खीरि।।
बहुत प्रीति अंतर–गत मेरे नयन[4] ओट दुख पाऊँ।
जानति हौं पिय कुँवर छैल कौं संग मिलें जसु गाऊँ।।
तुम्हरौ कोऊ विलुग न[5] मानैं लरिकाई की बात।
'परमानँद' प्रभु नित उठि आवहु भवन हमारे प्रात।।

५२६ (सारंग)

• लला रे ! नेंकु हमारें आउ।
जो माँगहु सो देउँ मनमोहन ! लै मुरुली कल गाउ।।
मंगलचारु करौं गृह मेरे सँग के सखा बुलाउ।
करहु बिनोद जुवति सुंदरि सौं प्रेम–पीयूष पियाउ[6]।।

---

१. कमल नयन, २. गोरस बेचनि (क.), ३. का सों (ग. ज.), ४. पलक, ५. नहिं (क)
• ललन रे ! लाल ! नेंकु भवन हमारें (ब. १३० ।२) से भी प्रारंभ हैं,
६. पिवाउ (क)

बलि–बलि जउँ मुखारबिंद की तेऊ त्रिभंग दिखाउ।
'परमानँद' रसभरी सहचरी लै चली करत उपाउ।।

५२७ (सारंग)

लाल ! नेंकु देखिये भवन हमारौ।
सीतल सुखद सिंहासन बैठहु अविचल राज तुम्हारौ।।
सासु हमारी खरिक सिधारी प्यौ बन गयौ सकारौ[1]।
आसपास घर सबै[2] को बसत है इहै[3] एकांति निन्यारौ।।
आछौ[4] सद्द दूध धरि झारी इतनक[5] अचबहु बारी।
'परमानंददास' की जीवनि इहि रति केलि तुम्हारी।।

५२८ (सारंग)

नीकौ बन देखहु[6] मदनगोपाल !
बहुत फूल फूले हैं मोहन ! तुम कौं गूथोंगी माल।।
बैठहु या तरुवर की छहियाँ अंबुज–नैन बिसाल।
नेंकु बयारि करों अंच[7] की पाँइ पलोटोंगी लाल !
राध–रंग–भरी प्रीतम के बोलति बचन रसाल।
'परमानंद' प्रभु इहईं रहिबौ अब नाहिंन ब्रजचाल।।

५२९ (कानरौ)

हौं रीझी तेरे दोऊ नैन।
थकित भई हौं चलि न सकति मारग एकौ[8] गैन।।
चलत छबीलौ देखत छबीलौ बोलत छबीले बैन।
'परमानँद' प्रभु गिरिधरलाल छबीलौ छबीली[9] सैन।।

साक्षात् प्रभुजी–वचन भक्तन–प्रति–

५३० (सारंग)

राधे ! तेरे भवन हौं आउँ।
सादर कहत साँवरौ गोविंद तनक[10] दूध जो पाउँ।।

---

१. सवारौ (ग. ज.), २. कोऊ नाहीं (बं. १३० । २), ३. ह्याँ (क. ग. घ. ङ. च. छ.)
४. औट्यौ दूध सद्य धौरी कौ लेहु स्यामघन पीजै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कह्यौ हमारौ कीजै।। (बं. १३० ।२)
५. अचवौ नेंकु जाउँ बलिहारी (बं. २४२ ।१३५), ६. खेलौ (ट.),
७. अँचरा (छ), ८. रौक्यो ऐन (बं. १३७ ।१), ९. और छबीली, १०. नेंकु (च)

मात–पिता जो बिलगु न मानै अरु इहि भेद न जानें।
जो तू सौंह करै बाबा की तौ मेरौ मन मानें।।
सब दिन खेलौं तेरे आँगन अपने नैन सिराऊँ।
निरखत रहौं चंद–मुख सीतल प्रेम–मुदित सुख पाऊँ।।
कही मते की कान लागि कै जब[1] हौं खरिक तें आऊँ
'परमानँद' प्रभु बिनती कीनीं अपने सूत्र[2] बुलाऊँ।।

५३१ (सारंग)

•बातनि लई री ! लाइ।
खेलनि मिस आउँगौ तेरें दूध राखि जमाइ।।
कनक[3] बरन सुढारि सुंदरि देखि मुख मुसिकाइ।
रूप–राचे[4] स्यामसुंदर नैन रहे अरुझाइ।।
गुपत प्रीति न प्रगट कीजै लाल ! रहौ अरगाइ।
'दास परमानंद' सँग नातरु गहती पाइ।।

15. स्वरूप–शोभा

प्रभुस्वरूप वर्णन–

५३२ (धनाश्री)

देखत ब्रजनाथ[5] बदन मदन कोटि वारों।
जलज निकट नयन–मीन उपमा विचारों।।
कुंडल ससि सूर उदित अघटन की घटना।
कुंतल अलि माल तामें मुरली कल[6] रटना।।
जलद–खंड सुंदर तन पीतबसन–दामिनी।
बन माला सक्र चाप मोही सब[7] भामिनी।।
मुगतामनि–हार मंडित[8] तारा–गन पाँति।
'परमानँद' स्वामी गोपाल सब विचित्र भाँति।।

---

१. *जबै खरिक २. मित्र*
•मोहन लई बातनि लाइ (बं. ७।४) से भी प्रारंभ है।
३. कंचन बरन सुभाइ सुंदरि देखि मन ललचाई (बं. १३२।१),
४. (बं. १३२।१), ५. ब्रजराय (इ. घ.), ६ .की (इ. घ.)
७. ब्रज (इ. घ.), ८. सुभग

५३३ (सारंग)

ढोटा कौन कौ है री[1] !

स्रुति कुंडल मंडित मकराकृत कनक कंठ दुलारी।।
घन तन स्याम कमल–दल–लोचन चारु चपल चल[2] री।
चंद बदन मुसिकाई माधुरी लर–लटकन[3] कल री !
उर मोतिनि की माल पीत–पटु मुरली कर–तल री !
पग[4] नूपुर मनि–जटित कुनित रव कटि–किंकिनि झल री !
बालक–वृंद जु मध्य बिराजत सोभा के बल री !
'परमानंददास' की जीवनि नंद–सुकृत–फल री !

५३४ (सारंग)

सिर धरें पखौआ[5] मोर के।

गुंजाफल फूलनि के लटकन सोभित नंदकिसोर के[6]।।
ग्वाल–मंडली–मध्य बिराजित कौतुक माखनचोर कें।
नाचत गावत बेनु बजावत अंस भुजा सख ओर कें।।
तैसें[7] फरहरात रस–भीने छबि पीतांबर–छोर कें।।
'परमानंददास मोहन[8] मनु हरत नैन को कोर कें।

५३५ (सारंग)

सुंदर मुख की हौं बलि–बलि जाउँ।

लावनि निधि गुन–निधि सोभा–निधि
देखि–देखि जीवत सब गाउँ।।
अंग–अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटित रस्मि रुचिर ठाउँ–ठाउँ।
तामें मृदु मुसिकानि हरत मन न्याइ कहत[9] कवि मोहन नाउँ
सखा–अंस पर बाम बाहु धरें या छबि की बिन मोल बिकाउँ।
'परमानंद' नंदनंदन[10] कौं निरखि–निरखि उर नैन सिराउँ •

---

१. आनि री ! (इ. घ.), २. चित री ! (ज) चचंल री (ग), ३. लटकत (इ. घ)
४. पद (क. ख. ज. के अतिरिक्त)
• सूरसागर प० सं० ३६४४ पर भी साधारण अन्तर से।
५. चंद्रिका मोर की, ६. की, ७. तैसे ही फरहरात रँग–भीने
८. कौ ठाकुर मन, 'परमानंद' नंदनंदन मन० (बं. १३२।१)
९. धरत (क.), १०. लाल गिरिधर कों (क.)
• सूरसागर प० सं० १२८१ पर भी साधारण अन्तर से।

५३६ (सारंग)

चारु कपोलनि[1] की झलक।
हरि कौ मुख–कमल देखें लागत नहिं पलक।।
कुमकुम कौ तिलकु बन्यौ कुटिल निबिड अलक।
मोरचंद–मुगट सीस मनसिज की ढलक।।
स्यामसुँदर देखनि कौं आवत जिय ललक।
'परमानँद' स्वामी गोपाल नैननि के सलक।।

५३७ (सारंग)

मदन गोपाल देखि री माई !
द्विभुज[2] त्रिभंगी स्याम[3] मनोहर
सुंदर निधि जुवतिन सुखदाई।।
माथें बने मोर के चँदवा रुचिर चित्र बनधातु बनाई।
गुंजा–हार माल बैजंती पीतांबर–छबि बरनि न जाई।।
अरुन अधर धृत मधुर मुरलिका
तैसिये चंदन–तिलक निकाई।
मानु द्वितीया–दिन उदित अर्द्ध ससि
निकसि जलद में देत दिखाई।।
अद्‌भुत मनि–कुंडल कपोल मुख अद्‌भुत उठत परस्पर झाँई।
मानु बिधु मीन बिहार करत दोउ
जल–तरंग में चलि–चलि आई।।
तैसे अनूपम नयन लाल के चितवत चित–बित लेत चुराई
सोभा और कहाँ लौं बरनों 'परमानंददास' मुख गाई।।

५३८ (सारंग)

सुंदरता गोपालहि[4] सोहै।
कहत न बनै नयन[5] मन आनँद जा देखत रति–नाइक मोहै
सुंदर चरन–कमल गति सुंदर गुंजाफल अवतंस।
सुंदर बन–माला उर–मंडित सुंदर गिरा मानौ कल हंस।।
सुंदर बेनु मुगट–मनि सुंदर सुंदर सब अँग स्यामसरीर।
सुंदर बदन अवलोकनि[6] सुंदर सुंदर तैं सुंदर बलवीर

---

१. कपोलनु (ख), २. ललित (ङ. छ.), ३. लाल (घ), ४. गोपालै,
५. नय नय (ख), नए नए आनँद (घ. छ.) नैन रहे आनँद (च.), ६. बिलोकनि (ङ.छ.)

वेद–पुरान–निरूपित बहुबिधि परब्रह्म नराकृत[1] रूप–निवास
बलि–बलि जाउँ मनोहर मूरति हृदै बसौ 'परमानँददास'

५३६ (सारंग)

सब भाँति छबीली कान्ह की।
नंदनँदन की आवनि नीकी मुख[2] बीरी लियें पान की।।
अलक छबीले तिलकु छबीलो पाग छबीली सुबान की
भौंह छबीली दृष्टि छबीली सैन छबीलौ सु मान की।।
चरन–कमल की चाल छबीली सब अँग–सोभा सुठान की
'परमानँद' प्रभु बेनु छबीली सुरति छबीली सु गान की

५४० (सारंग)

बंदसि बनी कमल–दल–लोचन।
चितबनि चारु चतुर–चिंतामनि
बिनु गुन चाप मदन–सर–मोचन।।
कटि पीतांबर लाल उपरैना माथें पाग मनोहर कुंडल
मुगता कंठ हाथ में बीरा पाँइ पाँवरी गति व्रज मंगल[3]
नंद–किसोर कूल–कालिंदी संग गोपाल–सभा मँह मंडल
"परमानंददास" बलिहारी जै जगदीस कंस–कुल–खंडन

५४१ (सारंग)

अपने गोपाल की बलिहारी।
नाना बिधि रचि फूल बनाए भली बनी है धारी।।
सौंधे सहित सुदेश केस–बिच बाँकी[4] कुलह बिथारी।
गोपिनि कौ अनुराग भाग सब बाँधी सुहथ सँवारी।।
निरखि–निरखि फूलति नँदरानी[5] सुख की रासि बिचारी
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सरबसु देउँगी बारी।।

५४२ (सारंग)

बदन की बलि जाउँ बोलत मधुर रस।
बचन–बचन प्रति सकल भुवन बस।।
चंद निचोइ रचे अंबुज–दल नाम धरयौ कमल–नैन।
यह अवलोकनि सुर–नर मोहे त्रिपुर फेरि रिपु जारयौ जिवायौ मैन।।

---

१. नररूप निबास, २. छबि, ३. मंडल, ४. बाँधी (ख), ५. ललितादिक,

अंग अंग प्रति मदन–कोटि–द्युति जहाँ परति दृष्टि तहाँ रहति
'परमानंद' चपलता तजि मनु स्वस्थ[1] भयौ ब्रजनाथ रति।।

५४३ (सारंग)

ओढें लाल उपरैनी झीनी।
तनसुख सेत सुदेश अंस पर बहुत अरगजा–भीनी।।
अति सुंगध सीतल उर चंदन सादिये रचना कीनी।
रहि धँसि भ्रुअ पर पाग दुपेची कोटि मदन–छबि छीनी
सूथन बनी जरमची[2] सोभित[3] गति गयंद की लीनी।
'परमानँद' प्रभु चतुर–सिरोमनि ब्रज–बनिता रति दीनी।।

५४४ (सारंग)

कान्ह[1] कमलदल नैन तुम्हारे।
अरुन बिसाल बंक अवलोकनि हठि मनु हरति हमारे।।
तिनि पर बनी कुटिल अलकावलि मानुहँ मधुप झँकारे
अतिसै रसिक–रसाल–रसमसे चित तें टरत न टारे।।
मदन कोटि रवि कोटि–कोटि ससि ते तुम ऊपर वारे।
'परमानंददास' की जीवनि गिरिधर नंददुलारे।।

५४५ (सारंग)

आनँद की निधि नंदकुमार।
परब्रह्म[4] नटभेष नराकृत जगमोहन लीला–अवतार।।
स्रवननि आनँद मन मँहि आनँद लोचन आनँद आनँद पूरति।
गोकुल–आनँद गोपी–आनँद नंद–जसोदा–आनँद–मूरति।।
सब दिन आनँद धेनु चरावत बेनु बजावत आनँद–कंद।
नृत्तत–हँसत–कुलाहल आनँद राधा–पति वृन्दावनचंद।।
सुर-मुनि आनँद संतनि आनँद निज गुन[5] आनँद रास-बिलास।
चरनकमल–मकरंद–पान के अलि आनँद 'परमानँददास'

---

१. *स्वच्छ (ग),*
२. *जरकसी (छ), हिरमिची,*
३. *सोहत*
४. *पूरनब्रह्म (ङ. छ.),*
५. *जन (ग. घ. च.)*

५४६ (सारंग)

ग्वालिनि न्याइ तजै गृह–बास।
कैंसें धीरज रहै लोल[1] मनि देखि कृष्ण–मुख–हास।।
मेघश्याम–तन नख–सिख–सुंदर पहिरें पिंगल वास।
चलत ललित गति जगत–विमोहन जानु[2] देखिए इक[3] लास
अंग–अंग प्रति रची ठगौरी काम–विनोद–बिलास।
'परमानंददास' कौं नागरि छाँडै[4] इहि उपहास।।

५४७ (गौरी)

रसिक सिरोमनि नंदनंदन।
रसमै रूप अनूप बिराजित गोप–बधू और सीतल चंदन
नैननि मँहि रस चितवनि मँहि रस बातनि मँहि रस ठगत मनुज पसु।
गावनि मँहि रस मिलवनि मँहि रस बैन मधुर रस प्रगट पावन जसु।।
जिहिं रस मत्त फिरत मुनि मधुकर सो रस संचित ब्रज–वृंदावनु।
स्याम–धाम रस रसिक उपासत प्रेम प्रवाह सु 'परमानँद' मनु

५४८ (गौरी)

नंदनंदन जिय–भाँवते तेरे चंचल डोल।
इंदु बदन भ्रू नासिका सुभ चारु कपोल।।
भाल तिलक अलकावली स्रुति कुंडल लोल।
अधर मधुर मुसिकावनी मृदु मीठे बोल।।
अंग–बास रस–संग हैं मधुपनि के टोल।
'परमानंद' प्रभु लै मिली नव उरज अमोल।।

५४६ (सारंग)

जो रसु रसिक करि मुनि गायो।
सो[5] रस रटत रहत निसि–बासर
सेस सहसमुख–अंत[6] न पायौ।।

---

१. *लोभ (ङ. छ.),*
२. *जनु (घ. ङ. छ.),*
३. *मँहि (क),*
४. *जो छाँडै० (क.)*
५. *सोई रसिक रटत निसि०,*
६. *पार (ग. घ. च.)*

गावत[1] सिव सारद मुनि मधुकर[2]
कमल कोस रस तउ न चखायौ।
जद्दपि रमा रहति चरननि–तर
निगमनि अगम अगाध बतायौ।।
तरनि–तनया–तट निकट बंसीबट
वृंदावन–बीथिनि जु बहायौ।
सो रस रसिक दास 'परमानँद'
वृषभानु[3] सुता कुच बीच दुरायौ[4]।।

५५० (गौरी)

सोभा–सिंधु अनत न रही री !
नंद–भवन भरि उमडि सखी री !
ब्रज की बीथिनि फिरति बही री !
देखि जु आजु गई हुती सजनी ! बेचनि गोकुल माँझ दही री !
कहा कहि[5] कहौं सुनि चतुर सखी री !
कहत न मुख सहस हुँ न निबही री !
जसोमति–उदर–अगाध–उदधि तैं
उपजी इहै जु सबहीनि कही री !
'परमानँद' प्रभु इंद्रनीलमनि
ब्रज–जुवतिनि उर लागि रही री ! •

५५१ (गौरी)

आनँद सिंधु बढ्यौ हरि–तन में।
श्रीराधा[6] पूरन ससि निरखत
उमगि चल्यौ ब्रज–वृन्दावन में।।
इत रोक्यौ जमुना इत गोपिनु
कछु एक फैलि पर्‌यौ त्रिभुवन में।
ना परस्यौ करमठ अरु ज्ञानिनि
अटकि रह्यौ रसिकनु के मन में।।

---

१. सोई रस नारद मुनि मधुकर कमल–कोस नेंसुक न चखायो (क.)
२. नारद (घ. ङ. छ.), ३. लै राधिका कुच० (क.), ४. समायो (ख.), ५. करि (ग.घ.छ.),
• सूरसागर प० सं० ६४७ पर भी साधारण अन्तर से, ६. राधा–मुख–पूरन

मंद–मंद अबगाहत बुधि–बलु
भक्त–हेत नित–प्रति[1] छिन–छिन में।
कछुक लहत नँद–सुवन–कृपा तें
सो देखियत 'परमानँद जन में।।

५५२ **(गौरी)**

सो राधा कें कंठ–भूषन।
इहि सिंगार सोहत निसि बासर निरमोलक लागत नहिं दूषनु।।
गरभ देव की विमल सीपि उपज्यौ मुकुताफल।
स्याम–धाम कमनीय ज्योति पानिप बिनु ही जलु।।
रतन–पारखी परखु जु जानत कसत कसौटी सुंदर चोखौ।
सोई 'परमानंद' उर भंडार लागतु तित नोखौ।।

५५३ **(मालव)**

मोहन नंदराइ–कुमार।
प्रगट ब्रह्म निकुंज–नाइक भक्त–हित अवतार।।
प्रथम चरन–सरोज बंदों[2] स्यामघन गोपाल।
मकर[3] कुंडल गंड–मंडित चारु नैन बिसाल।।
बलराम सहित विनोद–लीला सेस संकर–हेत।
'दास परमानंद' प्रभु[4] हरि वेद[5] बोलत नेत।।

५५४ **(कल्यान)**

गिरिधर सब ही[6] अँग कौ बाँकौ।
बाँकी चालि चलत गोकुल में छैल-छबीलौ का कौ ?
बाँके चरन–कमल गति बाँकी बाँकौ हिरदौ ताकौ[7]।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कियौ खौर ब्रज साँकौ[8]।।

५५५ **(मालव)**

माई ! तजि न सकौं सुंदरबर–सोभा मन बँध्यौ इहि रीति।
कोटि कहौ कोऊ अपनी सी बाढी परम प्रतीति।।
अरुन पाग पर पेच जरकसी तापर सुवन अपार।
मनहुँ जलद जिमि तात विराजित अरुन उदै तिहि बार।।

---

१. लीला छिन० (बं. १३२।१) २. बंदित (ज.), ३. कनक, ४. स्वामी (क.ख.), ५. निगम (ज), ६. अँग–अँग कौ (ग.), ७. जाकौ (ग.), ८. साँखौ (ग)

मृगमद–तिलक भाल पर राजित ए बिच बिंदुला एक।
मनहुँ जपा कौ कुसुम पात पर कहिए कहा विवेक।।
भृकुटी बंक संक नहिं मानत भृंग करत मैं लाल।
काम आदि के किये सकल बस धाइ धनुष नँदलाल।।
चंचल नैन मैन के निज गृह चतुर बरन बिस्तार।
खंजन मीन मधुप मृग हूतें देखियतु अधिक अपार।।
प्रभु–नासिका सुघट सबहिंनि तें अरध उरध मध्य मूल।
नीरत कीर सुमिरि दामिनी निकट नैन के कूल।।
अरुन अधर द्विज परम मनोहर आबलि चिबुक सुठि सार।
मंद हास अचरज कमला पर मनहुँ बज्र की माल।।
कुंडल कनक जडे मनि मरकत जगमगात जैसें मीन।
मनहुँ गंडस्थल अमी सुघट पर तहाँ भए लौ लीन।।
कौस्तुभ–कंठमाल मुकताफल नगनि–जटित जुग हार।
मनहुँ नछित्र–सहित ससि सबिता कीनौं नभ बिस्तार।।
बाहु–दंड करि अंबुज–पल्लव नख–भूषन थिर थोक।
बंसी कनक कुलिस ता ऊपर मनहुँ मुनिनि के लोक।।
नव नव फूल मंजरी नव नव वैजंती–अधिकार।
मनहुँ ईस तजि सीस सुरसरी धरही धसी जुग धार।।
कटि–किंकिनी कुनित कछनी पर ता तर लाल इजार।
मनहुँ कनक के खंभ सुधारे निमित हंस–परिवार।।
नूपुर रुनित सुभग चरननि पर रबकत झुकत अनूप।
मनहुँ सेत मनि रंजि रहे धुनि सुंदर सखनि सरूप।।
पद–अंबुज मकरंद पलहु पल दिगदिगंत नख–काँति।
मनहुँ राहु रिस दुखि–देखि ससि आनि दुरयौ दस भाँति।।
स्याम सुभग अँग धातु–चित्र अँग बसन प्रसन्न मनु हास।
मनहुँ तडित जल-जोग बने सखी प्रगट होत दुरि जाति।।
नख–सिख–रूप बन्यौ अति कमनिय निरखि भयौ आनंद।
जान राइ तजि चल न सकै चित कहै भृत 'परमानंद'।।

५५६ (सारंग)

कदँब–तर ठाढे हैं गोपाल।
आसपास ग्वालनि[1] की मंडली बाजत बेनु रसाल।।
बरुहा मुगट अरु[2] काननि कुंडल मृगमद–तिलक सुभाल
'परमानँद' प्रभु रूप–विमोही प्रेम–मगन ब्रज–बाल।।

५५७ (सारंग)

जो तू नंदगाँउ–दिसि जैहै।
नैननि कौ फल इहै मेरी सजनी ! राम–कृष्ण कौं देखति ऐहैं
बीथिनि बच्छ चरावत है हैं अबलोकत अति आनँद पैहै
गौर स्याम तन नील–पीत पट मकर कुंडल सिर मोर चंदै है
गुरुजन तें जो अवसर पावै कान्ह सुनत मो बात चलै है
'परमानँद' गिरिधरन कुँवर कौं मेरी कोतें अंग लगै है।

५५८ (गौरी)

जसोदा बदन जोवै बार–बार कमल–नयन प्यारे।
मधुपनि की पाँति बनी अलक घुँघरारे।।
जो सुख ब्रह्मादिक कौं कबहूँ नहि दीनौं।
धरा अरु बसुदेवादि सत्य बचन कीनौं।।
निगम गावै नेति–नेति पार कहूँ न पायौ।
'परमानँद' स्वामी गोपाल सोई गोकुल आयौ।।

५५९ (सारंग)

नटवर–भेष धर्‍यौ छबि आछें।
मोर–पिच्छ बन–धातु–चित्र किये मल्लकाछ कटि काछें।।
सेली हाथ दोहनी सँग लिये डोलत गाइनि पाछें।
'परमानंद' प्रभु करत दुहारी टेरि बुलावत बाछें।।

५६० (सारंग)

सोभा माई ! अब देखनि की की बार।
गोवर्द्धन परबत के ऊपर मोरनि की पतबार।।
ठाढे लाल पीत पट ओढें बरषत[3] घन टुंकार।
मोर–मुकुट मकराकृत कुंडल अरु घुँघुची के हार।।

---

१. सब ग्वाल मंडली (बं. १३०।१), २. काननि में कुंडल (ब. १३०।१)
३. कर मुरली बनमाल

कहिए कहा कहत नहिं आवै सोभा बढी अपार।
'परमानँद' देखति न अघाईं अँखियाँ है लख चार।।

५६१ (सारंग)

आजु धरी गिरिधर पिय धोती।
अति झीनी सु अरगजा–भीनी पीतांबर घन–दामिनी–जोती
टेढी पाग भृकुटी–छबि छाजत मुक्ताफल माला उरझाई।
.....'परमानँद' प्रभु सब सुखदाई।।

५६२ (सारंग)

सखी री ! सुंदरस्याम सलौना।
चंचल चपल चितवनी में हो ! कीनौ है कछु टौना।।
भूली लोक–लाज–कुल सजनी ! ना जानौं कहा हौना।
'परमानँद' प्रभु कोउ कैसी कहौ भूलि गई ग्रह–गौना।।

५६३ (सारंग)

लाल बैठे कुसुम–फूली लटपटी पाग विधुनि।
नित लोचन–सर कुंडल सोहै स्रवननि।।
सीतलताई सुंदरताई सौरभ छाइ रह्यो सोभन।
'परमानंददास-कौ ठाकुर भक्तनि के मन-रंजन।।

५६४ (सारंग)

• तुम देखौ माई ! सुंदरता कौ सागर।
बुद्धि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर।।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पट–पीत तरंग।
चितबत चलत अधिक छबि उपजति भँवर परति सब अंग
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुज–बल सुभग भुजंग।
मुक्तामाल मिली मानौं सुरसरि द्वै सरिता लिए संग।।
मोर–मुकुट मनिगन–आभूषन अवलोकनि सुख देत।
मानौं जलनिधि प्रगट कियौ ससि श्री औ सुधा समेत।।
देखि सरूप सकल गोपी–जन रही हैं बिचारि–बिचारि।
.....।।
तदपि सुरतौन सखियनि में रही है प्रेम हमारौ तन अतिछीजै
'परमानँद' स्वामी मनमोहन कह्यौ हमारौ कीजै।।

• *सूरसागर प० सं० १२४६ पर भी*

५६५ (जै जैवंती)

सुंदर बदन प्यारौ न्यारौ कैसे कै कीजिए।
मस्तक मुकुट छाजै चंद की जोति बिराजै
गुंजाफल–हार हियें मुख देखि जीतिए।।
केसर कौ खौर कियें पीतांबर उर लियें
हरषि सुकंठ लागि अमृत–रस पीजिए।
'परमानँद' प्रभु प्यारौ ब्रज कौ उजियारौ
तन मन धन वा पर वारि–वारि दीजिए।।

५६६ (धनाश्री)

गाँउ बसत एते द्यौसनि में आजु कान्ह मैं देखे।
जे दिन गए स्याम बिनु देखें तें दिन लेख अलेखे।।
कहिए तौ जो होइ सयानी कहिबे के उनमानें।
नंदकुमार निकाई कौ सुख नैना ही ये जानें।।
जब तैं रूप–ठगौरी लागी जुग–समान पल बितवति।
'परमानँद' स्वामी–रस अटकी ठाढी मुख–तन चितवति।।

५६७ (बिलावल)

माई री ! साँवरौ सौ ग्वाल–बाल नंदगाँउ खेलै।
देखत सुधि भूलि जाति मोहनी सी मेलै।।
मृग–छौंना से नैन सैन उर तैं बनसि कारौ।
तबहिं मन करषि लेत गति–मति सब टारौ।।
रुनझुन पाँइ पेंजनी अरु ठुमुकि डोलै।
तोतरे से अमृत–वचन मैया कहि बोलै।।
ऐसी जो होइ कअहुँ बहुरौं बाल पैए।
निरखि-निरखि नैन-सुख हँसि-हँसि उर लैए।।
जसुमति कौ पूत भाग ऐसौ सुत जायौ।
'परमानँद' बलिहारी निगम छंद गायौ।।

५६८ (बिलावल)

सुंदर ढोटा कौन कौ सुंदर मृदु बानी ?
भेद बतायौ ग्वालिनी जायौ नँदरानी।।
सुंदर भाल तिलक दिएँ सुंदर मुसिकानी।
सुंदर नैननि हरि लियौ कमलनि कौ पानी।।

सुंदरता तिहुँ लोक की या[1] ब्रज में आनी।
'परमानँद' प्रभु जसुमति सब सुख लपटानी•।।

५६९ (बिलावल)

कमल – नयन – मुख मुरली सोहैं।
बंक अवलोकनि मुख त्रिभुवन–मन मोहै।।
मोरचंद्रिका–मुकुट बनायौ बीच–बीच गुंजाफल लायौ।
तामें फूल बने चंपा के गोपवधू देखत अनुरागे।।
यह सरूप कबहूँ नहीं काछौ जो ब्रज बसि ब्रजनाथहि कीनों
निगम चोरि बाल–लीला–रस 'परमानंददास' ही दीनों।।

५७० (गौरी)

छबीली भौंहें तेरी स्याम मनोहर मानौं चढी कमान।
देखत रूप–ठगौरी लागी लोचन मनसिज–बान।।
करतल वेनु अधर–पुट दीने जबहि करत हौ गान।
सुरपति–नारि सुनत रव मोहीं थाके व्योम विमान।।
कंदर्प–कोटि वारने करिहों या मुद्रा की ठान।
'परमानँद' स्वामी रति–नाइक मेटत हौ अभिमान।।

५७१ (आसावरी)

हौं अपनें लाल की बलिहारी।
बिच[2]–बिच कुसुमनि नाना रंगनि भली बनी है धारी।।
कुंचित[3] केस सुदेस बदन पर बाँकी कुल्है अति प्यारी।
गोपिनि के[4] अनुराग–भाग–बस अपने[5] हाथ सँवारी।।
निरखि–निरखि फूलति नँद–रानी मुख की रासि बिचारी।
'परमानँद' स्वामी के ऊपर सर्बसु डारति[6] वारी।।

---

१. लै (इ. क.)
• भाव–साम्यः सूरसागर प० सं० १०६३ पर पाठ–भेद के साथ।
२. नाना विधि रचि फूल बनाए भली (ग.)
३. सौंधें सहित सुदेस केस–बिच बाँकी कुलह–बिधा री ! (ग.)
४. कौ (ग.)
५. बाँधी सुहथ सँवारी (ग.)
६. कीजै (ग.)

५७२ (कानरौ)

नैन की चाहनिमुख की मुसिकावनि।
कर–पल्लव गहि त्रिजग बेनु धरि मीठी है[१] गावनि।।
कुंडल चलित कपोल ललित पंडुल तन[२] सोहै।
कुंचित केस सुदेस गुंजामनि मोर–पंख मन मोहै।।
उर बन–माल बिचित्र बिराजित जनु घन–बीच इंद्र–धनु भासै
गिरा गँभीर सुनत सखि व्याकुल
देखत रूप मदन–जिय[३] त्रासै।।
बालक–वृंद नछित्र–माला[४] मानु पूरन चंद।
रजनीमुख दुंख–हरन मिल्यौ बलि–बलि 'परमानंद'।।

५७३ (बिलावल)

पीतांबर कौ चोलना पहिरोंगौ[५] मैया।
कनक–छाप ऊपर[६] दई झीनी एक तैया।।
लाल इजार चुनाव की जरकस कौ चीरा।
पहुँची[७] जरी जराव की उर[८] राजत हीरा।।
कंठ कौस्तुभ–आवली मोतिनि कौ हार।
काजर दै बेंदी दई हाँसें ब्रज की नारि।।
बेलि गुलाब जु मालती चंपे कौ हार।
देखें खरीं ब्रज–भामिनी कछु तन[९] न सँभार।।
नंद बबा मुरली दई कहैं तान बजाउ।
जोई सुनै ताकौ मन हरै 'परमानँद' गाउ।।

५७४ (सारंग)

बिहरत वृंदावन गोबिंद।
गोप–मंडली–मध्य बिराजित स्याम–मनोहर पूरन चंद[१०]।।
बरुहापीड दाम गुंजामनि पीत कर्निका स्रवन बिराजनि।
लोचन लोल कपोल सुचिक्कन सुंदर बेनु मधुर धुनि गावनि[११]।।

---

१. *मीठी–मीठी गावनि २. सखि ३. जनु (ख. के अतिरिक्त)*
४. *माल मधि मानों (ग.), माल में (ज.), ५. पहिरावत (च.)*
६. *ता पर धरी झीनी, ७. हँसुली हेम०,*
८. *मधि (ग.), ९. मन. (ग.),*
१०. *इंद (क. ग. ङ. छ. ज.), ११. बाजनि (इ.ग.ङ.छ.च.ज.)*

नाचत गावत अनँद–मूरति नटवत गति नाना रस–रूप
बरनत गोपी पावन लीला गोप–भेष हरि त्रिभुवन–भूप।।
रटत पसु–पंछी सुर–बनिता अपनौ जन्म कृतारथ मानत।
'परमानँद' स्वामी सुख–दाइक गोपी–गोप सबै सचु[1] पावत।।

५७५ (नायकी)

ठाड़ौ कुंज–भुवन।
लटपटी पाग सिथिल अलकावलि
घूमत नयन सोहै अरुन बरन।।
अरगजा भींजि रह्यो तन बागौ निरखि होत तन मगन।
'परमानंददास' कौ ठाकुर रति–पति–करन–सरन।।

५७६ (सारंग)

देखौ ढरकनि नवरँग–पाग की।
बाम भाग वृषभानु–नंदिनी चितवनि अति अनुराग की।।
सोभा–निधि गिरिधरन लाडिलौ मूरति परम सुहाग की।
राधा–मदनमोहन जू की जोरी 'परमानँद' के भाग की।।

५७७ (सारंग)

कमल–मुख देखत त्रिपति न होइ।
इहि सुख कहा दुहागिल जानै रही निसा–भरि सोइ।।
ज्यों चकोर चाहत उडुराजहिं चंद्र–वदन रहि जोइ।
नेंकु अँकोर देति नहिं राधे चाहति पियौ निचोइ।।
उनि तौ अपुनौ सरबसु दीनों एक प्रान बपु दोइ।
भजन–भेद न्यारौ 'परमानँद' जानत बिरलौ कोइ।।

स्वामिनी–स्वरूप–वर्णन–

५७८ (सारंग)

अरी अबला ! तेरे बल हि[2] न और।
बींधे मदनगोपाल महारस कुटिल[3] कटाच्छ–नयन की कोर ?
जमुना तीर तमाल–लता–बन फिरत निरंकुस नंदकिसोर।
भौंह[4] बिलास–पास–बस कीने मोहन अगह गहे तैं जोर।।

---

१. देखत (ग.), २. नाहिन (ग),
३. चपल (बं. ११३।७),
४. भ्रकुटि,

लै[1] राखे कुच–बीच निरंतर सृंखल सुदृढ प्रेम की डोर।
इहै[2] उचित होइ ब्रजसुंदरि ! 'परमानंद' चपल चितचोर।।

५७६ (सारंग)

आजु तेरी चूनरी अधिक बनी।
बारंबार सराहत मोहन[3] राधा परम गुनी।।
जे भूषन पहिरति ते सोहत चोली चारु तनी।
मदन गोपाललाल तैं मोहे जे त्रैलोक–धनी।।
अंग–अंग बरनौं कहा भामिनि ! राजत खुँभी अनी।
'परमानँद' स्वामी की जीवनि जुवतिनि रतन गनी।।

५८० (सारंग)

बदन–छबि मानहुँ चंद बियौ।
मदनगोपाल प्यारे कौ क्यों न जुडाइ हियौ।।
सायर मथ्यो स्रयो नैननि तैं तब मुनि तपन कियौ।
जुग की आदि निचोरि प्रेम-जल बिधि जस-तिलकु दियौ।।
अब[4] लगि राखि दुराइ सबनि तैं खग नग[5] सुर न छियौ
पूरन सकल प्रगट 'परमानँद' जग जसु गाइ लियौ।।

५८१ (गौरी)

धनि ए राधिका[6] वर–चरन।
सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन।।
नख चंद्र चारु अनूप राजित बिविध सोभा–धरन।
कुनित नूपुर कुंज बिहरत परम कौतुक–करन।।
रसिक[7] लाल मन–मोद–कारी बिरह–सागर–तरन।
बिबस[8] परमानंद' छिनु–छिनु स्याम जिनि के सरन।।

५८२ (कल्यान)

अमृत निचोइ कियो इक ठौर।
तेरौ बदन सँवारि[9] सुधा–निधि ता[10] दिन बिधिना रची न और।।

---

१. राखे कठिन कठोर कुचनि बिच सृंखल सुखद प्रेम० (ब. १३८।१),
२. ये नहीं उचित तोहि, ३. गिरिधर (क. ग. च. छ.)
४. राख्यौ हुतौ दुराइ (बं. १३०।१), ५. मृग मुनिनि चयो (बं. १३०।१)
६. लाडिली के ० (ग. ज.) (बं. ३२।१८), ७. नंद सुत मन० (बं. ३२।१८),
८. दास (बं. ३२।१८), ९. सुधारि, १०. तब तें

सुनि राधे ! उपा कहा दीजै स्याममनोहर भए चकोर।
सादर पिबत[1] मुदित तोहि देखत तपत काम उर नंदकिसोर
कौन–कौन अंग करौ निरूपन गुन अरु सील रूप की रासि
'परमानँद' स्वामी मन बाँध्यो[2] लोचन वचन[3] प्रेम की पासि

५८३ (नायकी)

प्यारी के दृगनि पर भँवर–नगनि बरसैं मीन खंजन।
अति ही सलौने अतिहि सुढार ढरे अति कजरारे भारे बिनु हि अंजन।।
सेत प्रसेत कटाच्छि दृग तारे उपमा पावें मृग ही कंजन।
'परमानँद' प्रभु रस बस करि लियौ सब सखियनि के मन के रंजन।।

५८४ (गौरी)

•करति जो कोटि घूँघट की ओट।
तौउ न रहत नयन अनियारे निकसि करत हैं चोट।।
पाछें फिरि देखें कोउ ठाढे सुंदरवर इक ढोट।
'परमानँद' स्वामी रति–नाइक लगी प्रीति[4] की चोट।।

५८५ (भैरव)

जै जै श्रीराधा–पद पंकज।
बिधि नारद सिब सेस सकल सुर
सनकादिक सुक मुनि बंछित रज।।
स्वस्तिक ऊर्धरेख कमल ध्वज
कुलिस मत्स्य जब छत्र बिराजित।
कलस तृकोन इंद्र–धनु अंबर जंबूफल अंकुस छबि छाजित।
अेष्टकोन अरु संख धेनु पद अरधचंद्र अति मंजु रह्यौ फबि
नख–मनि जोति ब्रह्म झलकति द्युति
जितनी कर नग दीपें ससि रवि।।
ललकत सादर समाजहिं सेवत
निगम–कदंब नेति–नेति गावत।
रुनित महामुनि नूपुर किंकिनि अंबर खंजन आदिक धावत
ब्रज–सुंदरि–कुच–कुकुम–रंजित संतत वृंदा–बिपिन–बिहारी।
रसिक अवनि उपासक सर्वसु 'परमानँद' आनँद–सुखकारी।।

---

१. पान करत तोहि देखत तृषित काम बस नंद०, २. बेध्यो, ३. बँधे
• बरजों कोटि घूँघट० से भी प्रारंभ है। ४. प्रेम

16. व्रताचरण

कात्यायनी

५८६ (सारंग)

हरि गुन गावति चलीं जमुना–नदिया के तीर।
लोचन लोल बाँह जोटि[1] सब स्रवननि झलकें बीर।।
बेनी बिकल[2] चारु काँधेला कटि–तट अंबर लाल।
हाथनि फूल[3] लियें करडी भरि उर मुगता मनि माल।।
जल–प्रवेस करि मज्जनि लागी प्रथम हेम के[4] मास।
ऐसे[5] प्रीतम होइ नंद–सुत तपु ठान्यो इहि आस।।
तब लै[6] चीर हरे नँद–नंदन चढि कदंब की डारि।
'परमानँद' प्रभु वर दैवे कौं उद्यम कियो मुरारि।।

५८७ (सारंग)

दै ब्रजनाथ ! हमारी आँगी।
नातरु रंग सुंरग होइगौ कै बिरियाँ मैं माँगी।।
ब्रजके लोग कहा कहि हैं[7] सब देखि परस्पर नागी।
खरे चतुर हरि हौ अंतरगत रयनि परी कब जागी।।
सकल सूत कंचन के लागे बिच–बिच रतननि धागी।
'परमानँद' प्रभु दीजत काहे न प्रेम सुरँग रँग रागी।।

५८८ (सारंग)

•हो मोहन ! हौं हारी तुम जीते।
नागर–नट ! पट देहु हमारे काँपत है तन सीते[8]।।
रसिक[9] गोपाललाल ! अबलनि पर एती[10] कहा अनीते।
'परमानँद' प्रभु हम जानति[11] हैं तुम गाल बजावत रीते।।

---

१. जोटि क्र (क.), २. सिथिल (बं. ११५।१)
३. लए फूल की डलिया अरु (बं. ११५।१), ४. हेम रितु (बं. ११५।१)
५. जासों पीय होइ नँदनंदन ब्रत ठान्यो (बं. ११५।१)
६. हीं (बं. ११५।१), ७ कहिंगे (क.)
• अहो हरि ! हम हारीं० से भी प्रारंभ है। ८. तीते (अ)
९. तुम ब्रजराजकुँवर (अ.), १०. ऐसी (अ.), ११. सब जानति गाल०

गनगौर–

५८६ (सारंग)

• बैठि रही राधे सकुमारी।
बूझति है वृषभानु की महरी क्यों न जेंवति बाबा की प्यारी।।
आजु हमारें गौरी कौ व्रतु ताकी बिधि तोही पें पाउँ।
सुंदर सुभग सलौनी ढोटा ताकौं पूजि हौं हाथ जिंवाउँ।।
ऐसौ ढोटा नंदराइ कौ ताकौ हौं अबही लै आऊँ।
तुम जानों सयानी मईया ! बेगि चलहु चरननि सिर नाऊँ।।
सुनि री जसोमति ! कुँवर आपनौ बेगि पठै हौं न्योंतनि आई
'परमानँद' स्वामी सब जानत
देखि–देखि तिहि सब निधि पाई।।

५९० (सारंग)

फूल गही वृषभानु–दुलारी।
पहिलें तौ निरखति नैननि भरि क्यों पूजौं एकांति निन्यारी
करि मज्जन नैननि अंजन दै गिरिधर[२] अपने हाथ जेंवायौ
अंग अंग सब भूषन भूषित बसन मनोहर तिलकु करायौ
रूप–रासि कैसे कें बरनौं नवनागरि नवनागर पायौ।
रति–रस–केलि करत दोऊ जन लीला–रस 'परमानँद' गायौ

५९१ (ईमन कल्यान)

राधे ! कौन गौरि तैं पूजी।
वृंदावन गोकुल गलियनि में सब कोउ कहत बहूजी।।
मदनमोहन पिय कौ बस कीन्हों और बात नहीं सूझी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर तो सी त्रिया नहीं दूजी।।

14. द्विजपत्नी–प्रसंग

५९२ (सारंग)

गोपालै जू माँगनि पठए भात।
देहु–देहु करि बालक बोले औ बैठे ब्रजनाथ।।

• क्यों बैठि रही (इ. ग. ङ. छ.) से भी प्रारम्भ है।
१. ब्रज–नारि सयानी (बं. १३०।२), २. मोहन (इ. क. ग. ङ.)

पठए[1] ग्वाल देंई नहिं ब्राह्मन फिरि हरि बूझनि आए।
लै उपहार चलीं सब नागरि भागनु दरसन पाए।।
बाम बाहु श्रीदाम कंध पर[2] लीला कमल फिरावैं।
सरनागत कों दैंहि अभय–पद 'परमानंद' जसु गावैं।।

५६३ (सारंग)

जानि दै कमल–नयन पें आजु।
सुनहुऽब कंत–लोक–लाज तैं बिगरत हैं सब काजु।।
वृन्दावन हरि धेनु चरावै[3] संकरषन के साथ।
पठए ग्वाल भात माँगनि कौं जज्ञ–पुरुष ब्रजनाथ।।
मो तौ[4] याहि देह कौ नाँतौ कत रोकत घर माँझ।
मिलौ पचारि स्यामसुंदर कहुँ नँतर जननि भई बाँझ।।
नंद कौ लाल भगत–चितांमनि धरै गोप कौ भेख।
'परमानंददास' कौ ठाकुर प्रिय विचारि किनि देख।।

18. दान–प्रसंग

गोपी वचन–

५६४ (सारंग)

छाँडहु लाल ! हमारी बाट।
अतिसै सुभर भरे किनि देखहु सिर–ऊपर गो–रस के माट
इनि बातनि कैसें मनु मानै जाइ चरावहु गोधन–ठाट।
कमल–नयन ! बलि जाउँ तुम्हारी हमहिं जानि देहु मथुरा घाट
कर–कस मिस ब्रजनाथ बिलोक्यौ सुरति भई उर अंतर दाट।
'परमानँद' प्रभु लेहु मुँदरिया प्रात–समै की भाजहु नाट।।

५६५ (सारंग)

मानौ या के बाबा की कोउ चेरी।
ढीठ्यौ[7] देत संक नहिं मानत मारग आवत घेरी।।

---

१. गए (छ.) ठटए (ग. ङ. ज.), २. धरि (घ.)
३. कत लोगनि तें लाजत (इ. ग. घ. ङ. छ. ज.), ४. चरावत (क. ख. के अतिरिक्त),
५. मों सो (ङ. छ.) ६. कों नतु जननी (इ. ग. घ. ङ. ज.), ७. गारी

कब लगि लाज बास की कीजै काँनि गुसाईं ! तेरी।
'परमानंद' प्रीति[1] अंतर–गति दरसन–मिस[2] कै[3] फेरी।।

५६६ (सारंग)

मोहन ! तुम जु बड़े के बेटा।
ऐसी न बूझिए चतुर–सिरोमनि ! बन मँहि करत झँझेटा।।
आवन–जान बहू–बेटी कौ जमुना–पानी घाट।
गगरी फोरत बाँह मरोरत चलनि न पावें बाट।।
जो इहि बात जसोदा सुनिहै बडे गोप उपनंद।
एक पूत सोई अलक लडैतौ करत अटपटे छंद।।
सुनत बात मन में सुख उपज्यो भावै हरि की केलि।
'परमानंददास' की जीवनि बढौ नंद की बेलि।।

५६७ (सारंग)

न गहौ कान्ह ! कोमल मेरी बहियाँ।
सुंदर–स्याम छबील ढोटा हौं नहिं आऊँ या बन महियाँ
बलि–बलि जाऊँ चरन–कमल की जाति ही अपने घर कहियाँ
होति अबार बार मोहि लागै छाँडहू कौन टेव तुम पहियाँ[4]
ब्रज बसि बास बडे के ढोटा करि न सकति तुम सौ फिरि नहियाँ।
'परमानँद' प्रभु कहि निबरों कछु बैठहु नेंकु कदम की छहियाँ।।

५६८ (सारंग)

छाँडहु मेरे अँचरा कान्ह ! तुम्हारी सौं आउँगी।
हौं तुम सौं सही करि बोलति इहि अवसर कत पाउँगी
उगटि–मगटि करि बसन पलटि कै फिरत बिलंबु न लाउँगी।
दधि की मटुकिया अबहि भवन धरि इहि पाँइनि उठि धाउँगी।।
जो पद–कमल ब्रह्मादिक दुल्लभ सो परमारथ पाउँगी।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलिकें नौतन नेह बढाउँगी।।

---

१. *प्रेम अंतरगत परसन*
२. *के मिस हेरी*
३ *करि,*
४. *महियाँ*

५९९ (सारंग)

•माधौ ! जानि दै चलि बाट।
कमल–नयन काहे कों रोकत औघट जमुना–घाट।।
औरै सखा देखिहैं कोऊ गहत सीस कौ माट।
तुम नाहिंन डर मानत मोहन ! नियरें गोधन–ठाट।।
क्यों बिकाइगो मेरौ गो–रस भोर करत हौ नाट।
चंद्रावलि उझकति 'परमानँद' निसि–दिन एही दाट।।

६०० (सारंग)

•• आवति ही गैल चली।
नंदकुमार बीच ही रोकी इनिकी बात अनकही भली।।
गो–रस बेचि मधुपुरी नीकें काहू बात न पूछी।
रहि ढोटा ! तू कहा चाहत है देखि मटुकिया छूछी।।
कहा भयो जो गाँउ कौ ठाकुर इहि कैसी लरिकाई।
'परमानँद' स्वामी कौ झगरौ तोकौं गारि बडाई।।

६०१ (बिलावल)

सुनु ब्रजनाथ ! छाँडहु लरिकाई।
बिनु रस प्रीति कहाँ तै उपजै तुम ठाकुर तौ करत बरियाई
कर कहि बाँह नाह अपने ज्यों हटकि करी मारग में ठाढी
कबहुँ छुवत लर कबहुँ तोरत हार
कबहुँ गहत कंचुकि अति गाढी।।
राते नैन रोष में भामिनि जानि देहु मोहि नंद–दुहाई।
'परमानँद' स्वामी रति–नाइक प्रेम–बचन कहि भलौ मनाई।।

• *ऐसा भी प्राप्त है–*
जानि देहु माधौ ! किनि बाट ।
मदन गोपाल कहा चाहत हौ रोकत औघट घाट।।
रहौ गोपाल ! दूरि जैबौ है जहाँ गोधन के ठाट।
गैहर होत है कबै मथेंगी आई धरि गोरस–माट।।
बाल लाल सों प्रीति अति बाढी देख बदन–विधु–रूप।
'परमानंद' नंद–नंदन कौ सुखद विनोद अनूप।। (स.भ.बं. ३१/१०)

•• *हो माई ! गैल. (बं. १२८।३) से भी प्रारम्भ है।*

६०२ (कल्यान)

काहे कों सिथिल किए मेरे पट।
नंद–गोप–सुत छाँडौ अटपटी बार–बार रोकत बन में बट
कर लंपट परसौ न कठिन कुच
अधिक बिथा तन रहे[1] निधर घट।
ऐसौऽब रहौ खेलु तुम्हारौ पीर न जानत गहत पराई लट
कबहुँ न सुनी कहूँ नहिं देखी बाट परत कालिंदी के तट।
'परमानंद' प्रीति अंतरगत सुंदर–स्याम बिनोद सुभग[2] नट

६०३ (कानरौ)

तुम बनमाली ! हो बनवासी !
बिना बिनोद रह्यौ नहिं भावै करत अटपटी हाँसी।।
कहिहों कछू छाँडि देहु अंचल तिहारे बाबा की को दासी
अपने रँग तू छैल ढिटौना गैल चल्यो किनि जासी।।
ऐसी और कौन जैसे तुम कहा भयौ जो दिखाई त्रासी।।
'परमानंददास' सँग लीने जहाँ–तहाँ करत मवासी।।

६०४ (गौरी)

कमल–नयन मनमोहना !
मेरौ मारगु छाँडिऽब देहु हो !
कटि–पट पीत सुहावनौ अरु उपरैना लाल !
सीस मोर के चंद्रका चंचल नैन बिसाल हो।।
कुंचित केस बदन छबि सुंदर चारु कपोल।
स्रुति मंडल कंचन मनि झलकत कुंडल लोल हो।।
भौंहनि भेद भलौ बन्यो मृगमद–तिलक सुभाल।
अलक मधुप सम राजहीं उर मुक्तावलि माल हो।।
कुंज–भवन तें हौं चली अपने गृह कौ जाति।
तुम हि बिचारौ न जिय कछू इहै कुहू की रात हो।।
उर–अंचर कर गहत हौ दूरि भयें कहौ बात।
बन बिच सौंह न लाइये सुंदर साँवल गात हो।।
साँझ परी दिन आँथयो अरुझाई किहि काम।
सेंतमेंत क्यों पाइये पाके मीठे आम हो।।

---

१. गहे (इ.), २. सुधर (क.)

नंदराइ के लाडिले ! याही कौं लई बोलि।
नांहिन रहत पुकारिहौं मति कंचुकि बँद खोलि हो।।
'परमानँद' प्रभु यों रमी ज्यों दंपति रस हेत।
सुरत–समागत–रसु रह्यौ नदि जमुना के रेत हो।।

६०५ (कानरौ)

का पर ढोटा ! नैन नचाबत है कोउ तेरे बाबा की चेरी।।
हौं दधि बेचनि जाति मधुपुरी आइ अचानक बन में घेरी।।
सैननि में सब सखा बुलाए बात हि बात समस्या फेरी।
जाइ पुकारों नंद जू के आगै जो कोउ छुहै मटुकिया मेरी
गोकुल बसि तुम ढीठ भए हौ बहुतै कानि करति हों तेरी
'परमाननँद' प्रभु रसिक–मुकुट–मनि
बलि –बलि जाउँ स्याम–घन केरी।।

६०६ (कानरौ)

का पर ढोटा ! करत ठकुराई।
तुम तें घाट कौन या ब्रज में नँदहु तें वृषभानु सबाई।।
लूटत घाट–बाट मधुपुर के ढोरत माट करत बरिआई।
मारगु छाँडि अबार होत है लालच लंपट की पत जाई।।
एक ब्रजवास बड़े के ढोटा ऐसी बुधि कौनै जु सिखाई।
'परमानंददास' कौ ठाकुर कर गहि गोपी उर में लाई।।

६०७ (सारंग)

माधौ जू ! हम सों तुम इहई ठई।
मारग जात दान माँगत हौ उह सनेह अति मिठई।।
तुम बालक से हम भर जोवन करत तव बिनती ढिठाई।
वह रस और भँवर मालति–बस तब जु मनावौ रुठई।।
करि मनुहारि पाँइ लागति हों क्यों हू प्रीति न टुटई।
'परमानँद' प्रभु कतब मिलहुगे इहऽब सँदेसौ झुठई।।

६०८ (देवगंधार)

लालन ! ऐसी बातें छाँडौ।
मदनगोपाल ! छबीले ढोटा ! झगरौ नित उठि माँडौ।।
अनौखे दानी अबहि चले[1] हैं माँगत गो–रस–दानु।
प्रात हि होतु आइ ठाढौ भयौ ऊगनि न पायौ भानु।।

---

१. भये (ङ. छ.),

चंद्रावली कह्यो सुनि मोहन ! इहै समै है औरु।
'परमानँद' प्रभु जानि देहु घर नंद–सुवन[1] सिर–मौरु।।

६०६ (देवगंधार)

लला हो ! किनि ऐसे ढँग लायौ।
डगर छाँडि उठि चतुर गुसाँइनि चाहत गारि दिबायौ।।
को तुम्हरे कुल भयौ अचगरौ गौ रस दान निबेर्‌यौ।
त्यों किनि चलौ ज्यों नंद भलौ मानें इक ब्रज–वास–बसेरौ।।
दारुन कंस बसत है मथुरा ताहु की संक न मानों।
नंद–गोप के कुँवर लड़ैते आपु बहुत करि जानों।।
बातें करत प्रेम–रस बाढ्यौ नैन रहे अरुझाई।
'परमानंददास' वह ग्वलिनि घरहि कौन बिधि जाई।।

६१० (देवगंधार)

तेरी सौं कान्ह ! अबहि आवति हों
नेंकु बिलमु कीजै कदम की छहियाँ।
या मटुकी धरि भवन रँवन कें
पाँ लागौं छाँडहु मेरी बहियाँ।।
चंद्रावलि पूछति माधौ प्रति कवन जुगति ठानी बन महियाँ
गो–रस दानु कहाँ कौ लागै इहि विनोद नीकौ तुम पहियाँ
नंद–गोप–सुत गाउँ कौ ठाकुर सुंदर स्याम करौं कैसें नहियाँ
'परमानँद' स्वामी की लीला तेरे गुन–गन गरग जु कहियाँ

६११ (कानरौ)

इहि गौइल रे अनोंखे दानी।
चले न जाहु अपुने रस ढोटा ! हम सों कौन चतुराई ठानी
कौन हाल[2] कीने हरि ! मेरे फिरि–फिरि कहत अटपटी बानी
ए सब बातें ब्यौरि कहोंगी बैठी जहाँ जसोदा रानी।।
अंतरगत[3] हरि सों मिल्यौ भावै
इहि[4] नागरता जु मुख हि रिसानी।
प्रान[5] बसत तेरे कमलनयन पें
जिय की जन 'परमानँद' जानी।।

---

१. नँदन (ङ. छ.), २. हवाल किये (इ. क. ग. से ज. पर्यंत)
३. नंदराय के कुँवर लाडिले बात तिहारी कपट सों सानी (छ.)
४. देखहु ग्वालिनि (क. ङ. छ.), ५. मन क्रम वचन और गति नाहीं

६१२ (आसावरी)

मटुकिया लै जु उतारि धरी।
इनि मोहन मेरौ अचरा पकर्‌यौ तब हौं आपु डरी।।
मोपै दान साँवरौ माँगे लीने हाथ छरी।
हौं ठटिवारि कंसराइ की सो तौ जिय क्यों बिसरी।।
पइयाँ लागि करति हों विनती दुहुँ कर जोरि खरी।
'परमानँद' प्रभु दधि बेचनि दै बिरियाँ जात टरी।।

६१३ (बिलावल)

अबहि कछु औरै चालि चलाई।
तुम हौ नंद के[1] लाडिले मोहन ! राखहु यह चतुराई।।
घाट–बाट घर[2] बन गिरि–कंदर सदा अटन तोहि भावै।।
गोकुल भए अनोंखे[3] दानी मारग चलनि न पावैं।।
चोली चीर निहारत चंचल[4] छाँडि लला इहि हाँसी।
'परमानँद' प्रभु राखु[5] अटपटी एक गाँउ के बासी।।

६१४ (देवगंधार)

भोर ही ठानत हौ नित झगरौ।
आईं गईं सदाई इहि मग कितहूँ न रोक्यौ डगरौ।।
तब मुसिक्याइ कही मनमोहन नंद कौ लाल अचगरौ।
रहि री ग्वालि ! जोबन मदमाती लेहुँ छीनि दधि सगरौ।।
काहे कों ढोटा नैन नचावत निकट है व्रजराज कौ नगरौ।
'परमानँद' प्रभु इहि विधि बिहरत रूप–रासि–गुन–अगरौ।।

६१५ (देवगंधार)

कबहू न दान सुन्यौ गो–रस कौ।
तुम तौ कुँवर ! बडे के ढोटा पार नहीं कछू जस कौ।।
रोकत हौ पर–नारि विपिन में नेंकु नहीं जिय कसकौ।
'परमानँद' प्रभु मिस जो दान कौ है कछु और ही चसकौ

---

१. *महरि के ढोटा छाँडौ ये लरकाई, लाल लाडिले (ग. ज.)*
२. *गिरि गैहवर कंदर सदा अटक०*
३. *हठीले*
४. *अंचल छाँडि लाल ये०,*
५. *छाँडि*

६१६ (सारंग)

सूधे क्यों न बोलौ कहा इतराने।
ब्रज में कौन कौन तें को बड़ौ नाहिंन रे इतराने।।
कौन टेव तिहारी दिन–प्रति की तकत अंग बिराने।
जोई–जोई करम किये कहि देऊँ 'परमानँद' रहौ छाने।।

६१७ (सारंग)

लेहु दही कान्ह ! लेहु दही !
मेरे संग की दूरि निकसि गईं
सबनि छाँडि हौं ही आनि गही।।
धरी उतारि मटुकिया सिर तें तब मनमोहन तें बात कही
खइये सुदधि जानि दीजै चली यह अबलौं कछु हौं न लही
ऐसौ रंग रह्यौ सुनि नागर ! ये अपने कुल–लाज बही।
'परमानँद' प्रभु चतुर ग्वालिनी सर्वसु लै निबही।।

६१८ (सारंग)

दधि लै आऊँगी उठि भोर।
तुम तौ इहि बन बछरा चरावत नागर नंदकिसोर !
जानि देउ बड़ी बार होत है घन मिलि दामिनि घोर।
जो न पत्याउ तौ गहनें राखौ उर–मनि–कंचन मोर।।
तुम गोविंद ! सर्वज्ञ कहावत मानौ ये तौ निहोर।
'परमानँद' स्वामी मनमोहन अटके नैन की कोर।।

६१९ (देवगंधार)

पिछौंड़ी बोहंनि दैहों दान।
साँचे मन तुम लेहु कन्हैया[1] ! राखहु मेरौ मान।।
मारग रोकि रहे मनमोहन ! सब गुन–रूप–निधान।
बदन देखि मुसिकानी भामिनी नैननि बान–सँधान।।
नंदराइ के कुँवर लाडिले ! सब के जीवन प्रान !
'परमानँद' स्वामी नागर हौ तुम तें कौन सयान।।

---

१. *साँवरे*

प्रभु–वचन–

६२० (देवगंधार)

रंचक चाखन दै री ! दह्यौ।
अद्‌भुत स्वाद स्रवन सुनि मो पें नाहिन परत रह्यौ।।
ज्यों–ज्यों कर अंबुज कुच झंपति त्यों–त्यों मरमु लह्यौ।
नंदकुमार छबीलौ[1] ढोटा अँचरा धाइ गह्यौ।।
हरि हठ करत 'दास' 'परमानँद' इहि मैं बहुत सह्यौ।
इनि बातनि खायौ चाहत है सेंत न जात बह्यौ।।

६२१ (सारंग)

ग्वालिनि ! गो–रस नेंकु चखाउ।
त्योंनारि तैं औटि जमायौ तातें कीजत भाउ।।
कहति बकति बे काज बाबरी ! औरनि देति जनाउ।
मदनगोपाल मोल दै लैहै ह्वै है तेरौ स्वाउ।।
कहा करै सकुचि मुसिकानी रस–लंपट ब्रजराउ।
'परमानंद' नंदनंदन सौ नयौ नेह नयौ चाउ।।

६२२ (सारंग)

ग्वालिनि ! मीठी तेरी छाछि।
कहा दूध में घालि[2] जमायो साँचु कहि मेरी बाछि।।
औरै भाँति चितैवौ तेरौ भौंह चलति है आछि।
ऐसौ टकुझुक कहूँ न देख्यो तू जु रही कछु काछि।।
रहसि कान्ह कुच कर गहि परसत तू जु परति है पाछि।
'परमानँद' गोपाल आलिंगी गोप–बधू हरिनाछि।।

६२३ (सारंग)

करि दधि मोलु आजु हौं लैहों।
इहि गज–मोती[3] तोरि कंठ ते चंद्रावली गुपति तोहि दैहों
पानि पानि ठाढी कीनी बाट माँझ लै माँड्यौ झगरौ
बाबा की सौं जानि न दैहो नंदकुमार हठीलौ अचगरौ।।
लोभ दिखाइ प्रीति जो कीजै[4] ते बात भली सब फीकी।
'परमानँद' प्रभु जानि महातमु जे हरि भजै चतुर सोई नीकी

---

१. अचगरौ (च), हठीलौ, २. मेलि
३. मोतिनि हार कंठ कौ०, ४. कीन्ही ये बात और सब फीकी

६२४ (सारंग)

नेकु तू मटुकी धरहि उतारि।
बैसि[1] प्रेम की बाते कीजै सुनि चंद्रावलि नारि !
बहुरि कहाँ इहि संगु बनैगौ ऐसे कानन माँझ।
लरिकाई कौ इहि रसु चलिहै द्यौस आँथये–साँझ।।
इहि जोबन धन संग कौन कै लाड दिवस द्वै–चारि।
'परमानंददास' हरि नागर खेल करै मनुहारि।।

६२५ (सारंग)

कौन हौ री ! किनि ठाढी रहौ।
कहा लिये तुम जाति कहाँ हौ हम सौं किनि इक बात कहौ
तुम्हें एतौ सौ काजु कहा है हमकों हौं तुम डगरु गहौ।
काम नृपति वृषभानु किसोरी दियो हो ! दान कौ बाँधि बहौ
एते राज–काज में देखे दूध–दही कौ दान न हौ।
'परमानंद' गोपाल हठीलौ दान लियौ अरु गह्यौ गहौ

६२६ (धनाश्री)

गो रस बेचिवे मँहि भाँति।
कमल[2]–नयन बिनु कोउ न लहै काहे कों मधुपुरी[3] जाति।।
दूध–दही दमका दैहै छुवत कहा सतराति ?
'परमानँद' ग्वालिनी सयानी मोलु करति मुसिकाति।।

६२७ (देवगंधार)

गो–रस राधिका लै डगरी।
नंद कौ लाल अमूलौ गाहक ब्रज तें निकसत पकरी।।
उचित मोलु कहि री ! या दधि कौ लैहों मटुकी सगरी।
कछुक दान कौ कछुक रोक लै कहाँ फिरैगी नगरी।
नंदराइ कौ कुँवर लाडिलौ दधि के दान की झगरी।
'परमानँद' स्वामी सौं मिलि कें सरबसु दीनौ भगि री।।

---

१. *बैठि (ग. ज.)*
२. *नंदनंदन*
३. *मथुरा (इ. घ. च.)*

६२८ (आसावरी)

अहो नागरी ! गोवर्द्धन–गिरि की
बिनु लाहैं क्यों उतरैगी घाटी।
समौ छाँडि दधि बेचनि आई कहि सुंदरी ! कौन मिस ठाटी
रसिकराइ तब देख्यो चाहत तेरी मथनिया मीठी कै खाटी
हमरौ दान जात ब्रजसुंदरि ! 'परमानँद' प्रभु इहि मिस डाटी।।

६२९ (देवगंधार)

नँदनंदन दान निबेरतु री।
राखहू रोकि दधि समेत ग्वालिनि[1] सखा वृंद–प्रति टेरतु री
जब उठि चलीं प्रबल[2] गोपीजन तब आगै ह्वै घेरतु री।
बाँधि जठर पट–पीत ललित गति
कर गहि[3] लकुटिया फेरतु री।।
काहू के कुच भुज अंचलु गहि सबहिनि कौ मनु मेरतु री।
'परमानँद' प्रभु रसिक–सिरोमनि मुसकि करखियुन[4] हेरतु री

परस्पर गोपी वचन–

६३० (सारंग)

मैं तोसों केती बार कह्यौ।
इहि मारग इक सुंदर ढोटा बरबट लेत दह्यौ।।
इत–उत सघन कुंज गह्वर तकि मारग रोकि रह्यौ।
इति कमनीय अंग[5] छबि निरखत नेंकु न परत रह्यौ।।
लोचन सफल होत पल निरखत बिरह न जात सह्यौ।
'परमानँद' प्रभु सहज माधुरी मनमथ–मानु ढहयौ।।

६३१ (सारंग)

मोहन नंद गोप कौ चंचलु।
जबहिं चलै परगु इक सुंदरि धाइ गहै तब अंचलु।।
चंद्रावली चतुर चित–अंतर तैं इहि मारगु आवै।
जँहई भेट होत नागर सौं बालक–लीला भावै।।

---

१. ग्वालिहिं (इ. घ.), २. चपल (ग. ज.), ३. लै
४. कनखियन (ग. ज.), ५. नैन (इ. घ.),

देखि सुरुप ठगौरी लागी गो–रस कौ मिस पायौ।
'परमानंददास' इहि झगरौ काम–प्रेम तें लायौ।।

६३२ (सारंग)

गो–रस बेचत ही ठगी।
कहा करै[1] बाकौ बस नाहीं मनसा अनत लगी।
खेलत बीच मिले नँदनंदन कालिंदी के तीर।
चितयो नेंकु कमल–दल–लोचन मनमोहन बलवीर।।
और सखी सब बूझनि लागीं करत कौन कौ मोलु।
'परमानंददास' बलिहारी मीठे तेरे बोलु।।

६३३ (सारंग)

इहि हरि के उर कौ गज–मोती।
चंद्रावली ! कहाँ तैं पायो दूरि करत दिन–मनि की जोती।।
ढीठ भई पहिरें तन डोलति बूझे तें कहा ऊतर दै है।
भूलि भवन जिनि जाइ नंद के निरखि छिडाइ जसोदा लैहै।।
अजहुँ तौ नृपति कंस जीयतु है मैं दधि के पलटे है पायौ
जो न पत्याउ सपथ दै बूझहु 'परमानँद' सँग ता दिन आयौ

६३४ (सारंग)

न जैहों माई ! बेचनि दह्यौ।
नंद–गोप कौ कुँवर लाडिलौ बन मँहि दाटि रह्यौ।।
इहि सब भेद सखी अपनी सों चंद्राबली कह्यौ।
माँगत दान अटपटी बातें अंचरु रबकि गह्यौ।।
रावरि जाइ उराहनु दैहों अब लगु बहुत सह्यौ।
'परमानंद' कहै सुनि भामिनि ! बहुतें पुन्य लह्यौ।।

६३५ (कान्हरौ)

आवति ही साँकरी खोरि।
दोऊ हाथ पसारि रहे हरि हौं बलि जाइ रही मुख मोरि
बालक सों बत[2] कहा कहो सखि ! लैऽब दोहनी हाथ मरोरि
ऐसौ चपल हठीलौ ढोटा भाज्यौ बहुरि मटुकिया फोरि।।

---

१. करों आप
२. उत (च)

कापर करनी अटपटी बरनों ग्रीव तें लियो मेरौ हार तोरि
ताकी साखि 'दास परमानँद' इक–इक लाल लहैं[1] लख कोरि

६३६ (कल्यान)

नंद जू के ढोटा हौं मारी।
करौं पुकार जसोदा आगै चोली हमारी फारी।।
बरबट दान दही कौ माँगै सिर तें मटुकी जु डारी।
इतनी लाज करति हौं नंद की नाँतर दैहों गारी।।
कुच नख देत अधर–रस माँगे यह देखौ मेरी सारी।
'परमानँद' प्रभु प्रीति प्रगट भई हँसि कर दीनी तारी।।

६३७ (आसावरी)

करत कत कमल–नयन सौं झगरौ।
दान देहु घर जाहु सयानी छाँडहु लाल अचगरौ।।
तातौ सीरौ तैं न मिलायो औटि जमायो सगरौ।
नेंकु छुवनि दै नंदलाल कों कबहुँ न लैहै अंगरौ।।
मोहनलाल गोवर्द्धनधारी नवलनि माँझ नवलरौ।
'परमानँद' प्रभु बतरस अटकी भूलि गयो ब्रज–डगरौ।।

६३८ (आसावरी)

अरी ! मोपै दान माँगै कुँवर कन्हाई।
बार–बार चोरी दधि बेच्यौ अब की बेर मैं जानि न पाई
जासौं तू राति लरी मृगनैनी ते हि सयानी बात लखाई।
लेउ निबेरि आजु सब दिन कौ जानि न देहुँ ब्रजराज दुहाई
मोहनलाल गोवर्द्धनधारी हरि नागरि बातनि अरुझाई
'परमानँद' प्रभु बतरस अटकी दान लियौ अरु डगर बताई

गोपी–वचन, यशोदा प्रति–

६३९ (सारंग)

कान्ह बिनोदी मन–चोर।
मेली ठगौरी सब गोकुल पर सुंदर नंदकिसोर।।
सुनि री जसोदा ! करतब सुत के तू जिनि जानहिं भोर।
जाके उर[2] आभिंतर[3] सब जगु खेलत अपने जोर।।

---

१. रहे (ग), २. उदर–आभ्यांतर (क), ३. आभासत (बं. १२८।२)

तौ छाँडों यों कहत चपल चित जो तू देहि अकोर।
माखन दूध दही घृत मेवा भावै[1] न भाँवते मोर।।
हँसी[2] जसोदा मूँदि कमल–मुख मेरे गो–रस थोर।
'परमानंददास' सँग लीने फिरत स्याम अरु गोर।।

६४० (सारंग)

बरजहु अपनौ ललनु।
सुनिरी जसोदा ! या बालक कौ ऐसोई चलनु।।
मारगु रोकि कंचुकी फारत ढोरत गो–रस माट।
प्रातकाल उठि निडर[3] हठीलौ रोकत जमुना–घाट।।
लाज की बात कहौं किहिं आगै पाँच लोक की कानि।
बाँह पकरि पैठत बन–भीतर पत्र बिछावत आनि।।
ऐसी बात करत मनमोहन प्रीति बढावत धीर।
'परमानंददास' कौ ठाकुर संकरषन कौ बीर।।

६४१ (देवगंधार)

देख्यो री कहुँ नंदकिसोरा।
स्याम बरन अरु पीत पिछौरा अंग चढाएँ गोरा।।
बरबट दान दही कौ माँगै वृंदावन के ठौरा।
कहिहों जाइ कंस के आगे करि है और के औरा।।
बरजि जसोदा ! अपनौ[4] ढोटा अंचर के किये कौरा।
'परमानंद' प्रीति के गाहक तिहूँ लोक सिर–मौरा।।

19. दीपमालिका–अन्नकूट

धनतेरस–

६४२ (बिलावल)

धनतेरस रानी धन धोवति।
गर्ग बुलाइ वेद–विधि पूजति ठौर–ठौर घृत–दीप सँजोवति
धूप दीप नैवद्य भोग धरि स्यामसुँदर इकटक मुख जोवति
'परमानँद' त्यौहार मनावति सब ब्रज पुष्टि–मारग–धन बोबति

---

१. भवन भाँवते, २. हँसति, ३. निपट (ग.), ४. अपने सुत कों (ग. ज.)

गो–क्रीडन–

६४३ (सारंग)

किलकि हँसे गिरिधर ब्रजराई।
भाज्यो सुबल लीनें गोद बछरुवा पाछें धौरी धाई।।
मधुमंगल लै मोर पखउवा दौरि वाहि अहटाई।
तोक ताक तकि मोहन की ढिंग भली बिधि धेनु खिलाई
खोलि भवन भूषन के बाबा परबी भली मनाई।
लियौ है लपेटि लाल गहने में सब ब्रज देखनि आई।।
स्याम जलद–गंभीर गरज सौं मोहन टेरि सुनाई।
वह वा पर वह वा पर गैयाँ सोभा कही न जाई।।
सुवर्ण[1] सिंग घंट अरु कठुला पीठि पत्र समुदाई।
'परमानँद' आनँद भरी खेलति मुरली तबै बजाई।।

६४४ (सारंग)

बिफरि गई धूमरि अरु कारी आपु गोपाल खिलावत।
कूकत ग्वाल बछरुआ लीनें बदन पिछौरी डारत।।
तब तौ हूँकि–हूँकि सनमुख है भली विधि भटू सँवारी।।
उच्च पूछ करि दौरी दोऊ कुँवर भरे अँकवारी।।
भीर खरिक के अटा–अटारी ठाढी हैं ब्रजनारी।
'परमानँद' देखें बनि आवै नवल लाल गिरिधारी।।

६४५ (सारंग)

सब गैयनि में धूमरि खेली।
सुनि[2] सुनि कूक सुबल की सनमुख
ग्वाल भजावत विफरि अकेली।।
तब[3] गिरिधरन धाइ कें पकरी कंठ बनावत सेली।
चुचुकारत[4] चुबंत कर फेरत कहत टेरि लावहु गुर भेली।।
आपु गोपाल खिलाइ[5] खिलावत औरुब धेनु जे हेली।
बाहँ चढाइ लैरुवा घेरत अलक बदन पर फैली।।

---

१. *सोने सींग घंटा (बं. १२८।३)*
२. *स्रवन पूछ ऊँचे करि सनमुख (बं. ६६।१)*
स्रवन पूछ उचकाइ सूधि है ग्वाल भजावत फिरत (बं. १२८।३)
३. *पकरि लई गोपाल आप ही (बं. १२८।३),* ४. *चूमत मुख आँकौ भरि भेटी*
५. *खबाइ खिलावत सब गायन कों हेली (बं. १२८।३)*

हरषित श्रीव्रजराज निरखि यह अपने लाल की अद्‌भुत केली
'परमानँद' देखें बनि आवै जब धौरी की बछिया झेली।।

६४६ (सारंग)

नीकी हो ! खेली गोपाल की गैया।
कूकें ग्वाल सब ठाढे इहै दिवारी नीको हो भैया !
नंदादिक[1] देखत[2] हैं ठाढे इहै परबनी नीको आई।
बरस द्यौस लगि कुसल कुलाहल नाचहु गाबहु करहु बधाई[3]
धौरी धेनु सँवारी[4] मोहन बडडे वृषभ सिंगारे[5]।
'परमानंद' राम दामोदर गोधन के रखवारे।।

६४७ (सारंग)

स्याम खरिक के द्वार करावत गाइनि के सिंगार।
नाना रंग सृंग मंडित किए ग्रीवा[6] मेले हार।।
घंटा कंठ मुरझ[7] के कठुला पीठनि कों औछार।
नूपुर किंकिनि चरन बिराजित बाजत चलत सुढार।।
इहिं बिधि सब ब्रज धेनु सँवारी[8] सोभा बढी अपार।
'परमानँद' नँदनंदन[9] खिलावत पहिरावत सब ग्वार।।

दीपमालिका–

६४८ (सारंग)

आजु अमावस दीप–मालिका बडी परबनी है गोपाल !
घर घर गोपी मंगल गावें सुरभी वृषभ सिंगारहु लालु !
कहति जसोदा सुनु मनमोहन ! अपने तात की आज्ञा लेहु
बारहु दीपक बहुत लाडिले ! करि उजियारौ आपुने गेहु
हँसि ब्रजनाथ कहत माता सों धौरी धेनु सिंगारहुँ माइ !
'परमानंददास' कौ[10] ठाकुर जिहिं भावति हैं सब दिन गाँइ

---

१. *सब मिलि कहत ग्वाल मोहन सों यह परबनी नीकी भैया (अ.)*
२. *देखें सब ठाढे इहै पाहुनी नीकी हो ! ऐया (घ. ङ. छ), ३. बधैया (अ. घ. ङ. छ.)*
४. *सिंगारो (अ. इ. ग.), ५. सँवारे (ङ. छ.), ६. अरु ग्रीवा मनि–हार (अ. इ.)*
७. *मोतिनि की पटियाँ, ८. सिंगारीं (इ)*
९. *प्रभु धेनु खिलावत निरखति व्रज–सुकुमारि*
१०. *संग लीनें मुदित खिलावें धौरी गाँइ (ब. ६६।१)*

६४६ (सारंग)

आजु कुहू की राति माधौ ! दीप–मालिका मंगलचारु।
खेलहु जूप[1] कृष्ण संकरषन मोहन मूरति नंदकुमारु।।
कहति जसोदा सुनु मनमोहन ! चंदन–लेप सरीर करौ।
पान फूल चोबा दिव्य[2] अंबर मनि–माला ले कंठ धरौ
गो–क्रीडन[3] पुनि काल होइगौ नंदादिक देखहिंगे आइ।
'परमानंददास' सँग[4] लीने मुदित खिलावत धौरी गाँइ।।

६५० (केदारौ)

घरी एक छाँडहु तात ! बिहारी।
राम–कृष्ण तुम दोऊ भैया ! आवहु करहु सिंगार।।
जसोमति कहति आजु अपनें[5] है दीप. मालिका नामु।
औरै[6] बालक सबै सिंगारे सुनहु कान्ह[7] घनस्यामु।।
पेलहु[8] गाँइ ग्वाल नाचत हैं गोपी गावहिं गीत।
'परमानंददास' इहि[9] मंगल वेद पुरान पुनीत।।

६५१ (कान्हरौ)

गिरिधर ! हटरी भली बनाई।
दीपावलि हीरा–मनि राजत देखत हरष होत अति माई।
अनेक भाँति पकवान बनाए अति नौतन बिंजन सुखदाई
सुंदर भूषन पहरि सुंदरी सौदा करनि लाल तें आई।।
सावधान ह्वै सौदा कीजै दीजैं तोल पुराई।
राखौ चित चंचल नहिं कीजै ग्वालि हँसी मुसिकाई।।
कैसें बोली बोलति ग्वालिनि ! कहत जसोदा माई।
'परमानंद' हँसौ नँद–घरुनी सबै बात हौं पाई।।

---

१. *द्यूत सहित, २. मृगमद सजि बनमाला ० (बं. ६६।१)*
३. *क्रीडा बिनु कल न परति है नंदादिक सब देखौ आइ।*
'परमानंद' लाल गिरिधर पिय आनँद मगन खिलावत गाँइ (बं. ६६।१)
४. *कौ ठाकुर खिरक (बं. १२८।३), ५. बडौ दिन (बं. १२८।३)*
६. *घर–घर (१२८।३) ब्रज के लरिका (बं. ६६।१)*
७. *स्यामघन राम (बं. १२८।३), स्याम बलराम (बं. ६६।१)*
८. *खेलहिं (ग. से छ.), खेलिहें (ध.) खेलें गाँइ गुवाल नचावें (बं. १२८।३)*
नाचत गाय ग्वाल अरु गो–सुत (बं. ६६।१)
९. *कौ ठाकुर रसना करौ पुनीत (बं. १२८।३)*

६५२ (कानरौ)

दीपदान दीपावलि देखौ हीरा खंभनि दीप–नग राजत।
जगमग जोति रही चहुँ दिसि तैं निबिड तिमिर अति भाजत।।
बैठे लाल हटरिया बेचत मृदु मेवा पकवान मिठाई।
देखि–देखि सोभा ब्रजसुंदरि सौदा लैन लाल सौं आई।।
मृदु मुसुकाइ कहत लालन[1] सौं घटि जिनि तोलौ लाल !
'परमानंद; प्रभु नंदनंदन हँसे और हँसी सब ब्रज की बाल।।

गोवर्द्धनपूजा–

६५३ (केदारौ)

नंद गोवर्द्धन पूजहु आजु।
जातें गाँइ ग्वाल गोपिका सब[2] सुख नीकौ राजु।।
जाकों रचि–रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सौं काजु।
गिरि के बल बैठे घर अपने कोटि इंद्र पर गाजु।।
मेरौ कह्यौ मानि अब कीजै भरि–भरि सकटनु साजु।
'परमानंद' आनि कै दीने वृथा करत कत नाजु।।

६५४ (केदारौ)

बार–बार समुझावनि लागे अमृत–बरनी[3] बानी।
सुनहु पें[4] उपदेस हमारौ चारि पदारथ दानी।।
करहु बेगि पकवान बहुत करि दूध दह्यौ घृतसानी।
गोवर्द्धन की पूजा कीजै गोधन कौ सुख दानी।।
इहै प्रतीति नंद कैं आई कान्ह कही सो मानी।
'परमानँद' प्रभु मान–भंग करि झूठे[5] कीने पानी।।

६५५ (केदारौ)

गोधन पूजहिं गोधन गावहिं
गोधन के सेवक संतत हम गोधन ही कों माथौ नाँवहिं।।
गोधन मात–पिता गुरु गोधन गोधन देव जाहि नित ध्यावहिं।
गोधन कामधेनु कलप द्रुम गोधन पैं माँगहि सो पावहिं।।

---

१. मोहन (ग.), २. सबै सुखनि कौ (ङ. च. छ.)
३. बरखत (ग. से छ.), ४. धौ (इ. ग. से छ.) सुनि हो इक०
५. झूठौ कियो इंद्र कौ पानी

गोधन खोरि खरिक गिरि गह्वर रखवारौ घर बन जहाँ छाँबहि।
'परमानंद' भाँवतौ[1] गोधन गोधन कौं[2] हमही फिरि भाँवहि।।

६५६ (सारंग)

गोवर्द्धन पूजत परम उदार।
गोप–वृंद गोहन मोहन के सोभा बढी अपार।।
षट् रस–बिंजन भोग सैल[3] के धरत बिबिध उपहार।
पूजा करि पाँइ[4] लागि प्रदच्छिना देत दिवावत ग्वार।।
चहूँ ओर गोपी कंचन–तन[5] मानों गिरि पहिस्यो है हार।
'परमानँद' प्रभु की छबि निरखत रह्यो जु बिथकित मार•

६५७ (बिलावल)

गोवर्द्धन पूजि हैं हम आइ।
राखौ भाग नंद मधवा कौ करि है कहा रिसाइ।।
आनँद मन सब ग्वाल–बाल चले रस गो–रस माट बनाइ
सखनि सहित बलराम–कन्हैया फिरत सिंगारत गाँइ।।
आपुन स्याम लिएँ गिरि–मूरति अंतर–प्रीति उपाइ।
'परमानंद' प्रभु लै दधि–ओदन बैठि रहे सब खाइ।।

६५८ (बिलावल)

गिरि गोवर्द्धन पूजत तात।
भरि पकवान चले परबत लौं मोहन बूझत मात।।
ग्वाल बाल सखा संग के लिएँ माखन–दधि सब खात
'परमानंददास कौ ठाकुर गिरिधर पिय बोलत तुतरात

६५९ (बिलावल)

ब्रजपुर बाजत सबहिनि के घर ढोल दमामा भेरी।
श्रीगोबरधन की पूजा के हेत सबनि कौं टेरी।।
अन्नकूट बहु भाँति बनावत रचि पकवाननि ढेरी।
नंदराइ पूजत परबत कौं गाँइनि लाऔ घेरी।।
धूमरि गाँइ बुलाइ ऊपर लाल उपरैना फेरी।
सुबल सुबाहु कूक दै दौरे नाँही लगायौ बेरी।।

---

१. लाडिलौ (बं. १२८ ।४), २. पें माँगे सोई पावहिं (बं. १२८ । ४)
३. सकल लै (अ.), ४. गोपी कंचन मनि दच्छिना (अ.) ५. मनि (अ.)
• कुंभनदास की छाप से भी (अ. ८१) में

डाढ मेली महुरी की बछिया लायो पूछ है छछेरी।
देखत 'परमानंद' सखनि कौं गाँइनि लियें उझेरी।।

६६० (सारंग)

अपनौ देव गोवर्द्धन–रानौ।
जाकी छत्र–छाँह में बैठे ताकौं तजि औरै क्यों मानौं।।
नीकें तृन सुंदर जल नीकौ नीकें गोधन रहत अघानौ
नीकें ब्रज सब होत सुखारौ सुरपति कोप का कौ पहिचानौ
खीर खाँड घृत भोजन मेवा ओदन साक अनोपम आनौ
परमानंद गोवर्द्धन उच्छव अन्नकूट अलौकिक जानौ।।

६६१ (केदारौ)

गोधन पूजिंके घरु आए।
जननि जसोदा करति आरती मोतिनि चौक पुराए।।
मंगल कलस बिराजित[1] द्वारें बंदनबार बनाए[2]।
'परमानँद' मोहन[3] गिरि पूज्यौ भए भोजन मन भाए।।

गोवर्द्धन–धारण–

६६२ (केदारौ)

माधौ ! राखहु अपनी ओट।
वह देखहु गोवर्द्धन–ऊपर उठे मेघ के कोट।।
तुम जु सक्र की पूजा मेटी बैरु कियौ उहि बोट।
नांहिन नाथ महातमु जानत भयौ खरे तें खोट।।
लियौ उठाइ हाथ करि परबत मुदित ग्वाल अस्फोट।
काली–दमन पूतना–सोषन जियौ नंद के ढोट।।
सात दिबस जल बरषि[4] सिरानौ तन[5] मन कियौ निघोट
'परमानंद' इंद्र चलि आयौ मुगट चरन[6]–तर लोट।।

६६३ (केदारौ)

बरखन दै री ! बरखनि दै ! हमारें गोकुल–नाथ सहाइ।
एक हि हाथ नंद के नंदन परबत लियौ उठाइ।।
मोहि[7] भरोसौ कमल–नयन कौ बार न बाँकौ जाइ।
महाबली घनस्याम मनोहर समरथ जादौराइ।।

---

१. लियें ब्रजसुंदरि बंदन द्वार, २. बँधाए (अं. ग.), ३. गिरिधर, ४. वृष्टि निवारी (इ.)
५. मधवा भयो (अ.), ६. पाँइ (इ. घ.), ७. हमें (अ.)

सात दिवस जल बरषि सिरानौ मघवा चल्यौ खिसाइ।
'परमानँद' स्वामी के गोपा निकसे बेनु बजाइ।।

६६४ (पंचम)

महाकाय[1] गोवर्द्धन परबत एक हि हाथ उठाइ लीनौं।
देवराज कौ गरबु हर्‌यौ हरि अभय–दान ग्वालनि कौं दीनौं
गरग बचन कहे सो साँचे इहि बालक लीला–अवतारी
कहें नंद ग्वालनि के आगें सेवा करहु सनेह बिचारी।।
तोर्‌यौ सकट पूतना मारी तृनावर्त–दानव संघार्‌यौ।
कालिन्दी जल निर्बिसु कीनौं कालीनाग विदेस निकार्‌यौ
अर्जुन वृच्छ निमिष मँहि तोर्‌यौ[2] आपुनि दाम ऊखल[3] बँधाए।
'परमानँद' स्वामी मुसिकाने किए भक्त–मन–भाए।।

६६५ (गौरी)

आवहु रे ! आवहु रे ग्वालौ ! या परबतकी छाँह[4]।
गावहु नाचहु करहु कुलाहल जिनि[5] डरपहु मन माँह।।
जिनि तुम्हारौ पकवान खायौ सब सोई रच्छा करि है।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोबरधन[6] कर धरि है।

६६६ (धनाश्री)

महाबल कीनौ हो ब्रजनाथ !
इत मुरली उत गोपिनि सौं रति इत गोवर्द्धन हाथ।
इत बालक पै पान करत हैं इत सुरभी तृन खात।
इत सब बच्छ चरत अपने रँग ग्वाल बजावत पात।।
कोप्यो[7] मेघ महाप्रलय कौ[8] झर लायो[9] दिन सात।
'परमानंद राखि लिए मोहन मेटि इंद्र की घात।।

६६७ (सारंग)

अब न छाँडौं चरन–कमल महिमा मैं जानी हो।
सुरपति तुम नाउँ धर्‌यौ लोका अभिमानी हो।।

---

१. भार. (अ.), २. तोरे (ङ. छ.), ३. उलूख (च. छ)
४. छहियाँ (बं. १२८।४), ५. सुखै चराबहु गैयाँ (बं. १२८।४)
६. गिरिगोवरधन बं. (१२८।४) नख ऊपर गिरि (बं. १२८।४)
७. कोपे (ग. च. छ.), ८. के (ग. च. छ.), ९. लाए (ग. च. छ.)

अब ही लौं[1] जानत हौ ठाकुर है कोई।
अपनौं[2] ब्रज राखि लियौ मेरी पति खोई।।
ऐरावति कामधेनु गंगा–जलु आन्यों[3]।
हरि कौं अभिषेक कीनौ जै जै सुर–बान्यों[4]।।
बार–बार प्रनामु[5] करत गोवर्द्धनधारी।
'परमानँद' प्रभु[6] गोपाल लीला–अवतारी।।

६६८ (सारंग)

हम नँदनंदन राज सुखारे।
सबै[7] टहल आगेंई भुज–बल गाँय गोप प्रतिपारे।।
गोधन फैलि चरत वृंदावन राखत[8] कान्ह पियारे।
सुर–पति खुनस करी ब्रज–ऊपर आपुन सौं पचिहारे।।
गोपी औरु[9] ग्वाल बनि आए अब बड भाग हमारे।
'परमानँद' स्वामी सरनागत अब[10] जंजार निवारे।।

६६९ (बिलावल)

यातें जिय भावै सदा गोवर्द्धन–धारी।
इंद्र–कोप तें नंद[11] की आपदा निवारी।।
जो देवता अराधिये सो हरि कौ भिखारी।
अन्य[12] देव कत सेइये बगरे[13] उपकारी।।
दुःसासन के क्रोध[14] तें द्रौपदी उबारी।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ भक्तनि हित–कारी।।

६७० (बिलावल)

चिरजियौ लाल गोवर्द्धनधारी !
सात दिबस जल–वृष्टि निवारी या ढोटा पर वारि डारी।।
देवराज[15] ! प्रतिज्ञा[16] मेरी गोप–भेष लीला–अवतारी।
नलकूबर मनिग्रीव उद्धारे बालक–दसा पूतना मारी।।

---

१. अब लौं हौं जानत हौ ठाकुर नहीं कोई, २. गोपी ग्वाल राखि लिये
३. आनी., ४. बानी., ५. प्रनत इंद्र, ६. गोप–भेष (ग. घ. ङ. छ)
७.. सब दुख टारे या भुज बल करि गाय. (अ), ८. महाबली रखवारे. (अ.)
९. ग्वाल कहत सब फूले अब निज भाग (अ), १०. सब (अ. ग. से छ.)
११. गोप की (घ) व्रज–जन की (ङ. च. छ.)
१२. आन देव कित बिगरें सुभकारी (अ.), १३. बिगरें (ग.) बगरे अपकारी
१४. कोप, १५. देवनि राज, १६. परतिग्या

देहि असीस सकल गोपीजन–राज करहु वृंदावनचारी।
परमानंददास' कौ[1] ठाकुर अनुदिन आरति हरत[2] हमारी

६७१ (बिलावल)

हमें सरन तुम्हारे राखहु जू।
गोपी–ग्वाल पुकारत हरि पै जुरि–जुरि बादर गरजत जू
इंद्र कोप कीनों हम[3]–ऊपर मेघ समूह पठाए जू।
मूसलधार[4] घन बरसनि लागे रिपु–समान होइ धाए जू
जिनि डराउ हौं नाथ तुम्हारौ हँसिऽब[5] कहत मुरारी जू।
अनआयास छानौ ल्यों परवत कर धरि लियो उपारी जू
सात दिवस अपनौ सौ कीनों मघवा गयौ खिसाई जू।
'परमानँद' स्वामी के गोपा बसे निसान बधाई जू।।

६७२ (बिलावल)

जहाँ गगन–गति गरगु कह्यौ।
इहि बालक अवतार पुत्र[6] है कृष्णनाम आनंद लह्यौ।।
द्रोन धरा बसु परम तपोधन पुत्र काम[7] निर्वाह करी।
ते तुम नंद–जसोदा दोऊ बरु माँग्यौ सुत देहु हरी।।
कहें[8] नंद ग्वालनि के आगें सकल[9] मनोरथ पूरन करै।
'परमानंददास' कौ ठाकुर गोकुल की आपदा हरै।।

६७३ (बिलावल)

करत हैं भगतनि की सहाइ।
दीनदयाल देवकीनंदन समरथ जादौराइ।।
हस्त कमल की छाया राखै जगत निसान बजाइ।
दुष्ट–भवन–भय हरत घोष–पति गोवर्द्धन लियौ उठाइ।।
कृपा–पयोधि भगत–चिंतामनि ऐसें बिरद बुलाइ।
'परमानंददास' प्रतिपालक वेद बिमल जसु गाई।।

---

१. की जीवनि, २. हरहु (अ.)
३. व्रज (अ.),
४. मूसल धारा बरसनि (अ.),
५ हँसि–हँसि (अ)
६. पुरुष, ७. नाम (घ),
८. कहत, ९. सब

६७४ (बिलावल)

• बूझनि लागे गोप गोवर्द्धन क्यों धर्‍यौ[1] ?
कहौ कान्ह[2] ! का कौ कछु बरु है क्यों मघवा पाँइनि पर्‍यौ
इहै मंत्र किनि हमहिं सिखाबहु करें तुम्हारी सेवा।
'परमानँद' ऐसौ ठाकुर तजि कौन[3] उपासै देवा।।

६७५ (सारंग)

•• धनि इहि कूख जनमु जहाँ लीनों गिरि–गोवर्द्धनधारी
लरिका कहा बहुत सुख जाए जो न हो होइ उपकारी।।
एक सौ लाख–बराबर गिनिए करै जो कुल रखवारी।
अति आनंद कहत गोपीजन मन–क्रम–वचन विचारी।।
इंद्र कोप कीनौं ब्रजऊपर मघवा वृष्टि निवारी।
'परमानंददास' कौ ठाकुर भुजबल गरब अहारी।।

६७६ (सोरठ)

+कैसौ माई ! अचरज उपजत भारौ।
परबत लियौ उठाइ अकेले सात बरस कौ बारौ।।
सात द्यौस निसि एक टक ही इनि बाम पानि पर धार्‍यौ।
अति सुकुमार कुँवर नंद के कैसे बोझ सहार्‍यौ।।
बरषें मेघ महापरलै के तिनि में घोष उबार्‍यौ।
गोधन ग्वाल गोप सब राखे सुरपति गरबु प्रहार्‍यौ।।
भक्त हेत अवतार धरत प्रभु प्रगट होत जुग चार्‍यौ।
'परमानंद' प्रभु की बलि जैये जिनि गोवर्द्धन धार्‍यौ।।

६७७ (सारंग)

अपने ब्रज कौं नाथ निबाहिये।
गोप कौ राइ गोवर्द्धन पर्वत ताकी कीरति गाइये।।
आपनु सुरपति कहाऔ सो और इनिकौ कह्यौ कछु खाइये
गैयाँ चरत गिरिवर के पाछें इहि प्रताप सुख पाइये।।

• *सबै मिलि बूझें गोप० से भी प्रारंभ है।*
१. *धार्‍यो (ग.), पार्‍यो (ग.)*
२. *कृष्ण ! ऐसौ डर का कौ मधवा* ३. *कित आराधें*
• *धन्य कूख जनमे गिरिधारी (अ.) से भी प्रारंभ।*
+ *'देखौ माई ! अचरज उपजै भारो' से भी प्रारंभ है (बं. ६।५)*

निसि–दिन रच्छा करत गोकुल की जाके निकट रहाइये
'परमानंद' प्रभु कह्यौ अब ही सब मिलि सिला पुजाइये

६७८ (सारंग)

मधवा कौन ! कहाँ कौ ईस।
जातें तुम डरपत सब ब्रज–जन धरत चरन पर सीस।।
केतौक बल रे ! बापुरे कौ कहा करैंगौ रीस !
जातें प्रगट भये तुम ता दिन ये आपनौ सब दीस।।
अब ही सब अरपौ बलि ब्रजजन गौरी पर बरस बरीस
परमानंद कहें जन माधौ ! ए जु अपनौ जगदीस।।

६७९ (सारंग)

गिरि कौ महातमु अब मैं जान्यौ।
केतीइक बात कहों हौं बा की कैसें करौ बखान्यौ।।
निगम अगत्य जाकौ जसु निसिदिन चाहत दरस दिखान्यौ
'परमानँद' प्रभु जो–जो कह्यौ सो नंदराइनै मान्यौ।।

६८० (बिलावल)

गोवर्द्धन नख पर धर्‌यौ मेरे बारे कन्हैया।
दधि अच्छत फल–फूल लै भुज चरचति मैया।।
जुरि आईं सब घोष की और जु अढैया।
ग्वाल–बाल पाँइनि परैं गोपी लेति बलैया।।
बलदाऊ फूल्यौ फिरै जग जीत्यो रे भैया !
'परमानँद' आनंद में ब्रज बजति बधैया।।

६८१ (बिलावल)

गोवर्द्धन धरनी धर्‌यो मेरे बारे कन्हैया।
दधि–अच्छत फल–फूल लै भुज पूजति मैया।।
विप्र बोलि बरनी करी दीनी बहु गैयाँ।
ग्वाल–बाल पाँइनि परे गोपी लेति बलैयाँ।।
नंद मुदित मन फूलहीं कीरति जग–छैया।
'परमानँद' ब्रज राखि लियो खेलत लरकैया।।

६८२ (बिलावल)

सुंदर सब अँग स्याम सरीर।
गोवर्द्धन लीनौं कर ऊपर गोप कुँवर राजत बलवीर।।

ए सब सखा खिजावत मोकों लीनौं परबत जाति अहीर
'परमानंददास' सँग बिहरत उर माला पहिरावत चीर।।

६८३ (बिलावल)

मैया ! मेरी रही बाँह पिराइ।
सात द्यौस गिरि कर धरि राख्यौ मेरे दूखत पाँइ।।
बडे गोप उपनंद नंद जू करि हैं सबै सहाइ।
'परमानँद' पग चाँपि जसोदा मुख की लेति बलाइ।।

६८४ (कानरौ)

मति गिरि गिरै गोपाल के कर तैं।
आवौ ग्वाल ! लकुट लै-लै टेकौ अपनी-अपनी भुजनि के बर तैं।।
सात दिवस मघवा झर लायौ बरषि–बरषि हार्‌यौ अंबर तैं
गोपी–गोप नंदादिक राखे बूंदन एक परति नग झर तैं
आनि तिरिछी जल लै आयौ नंदनंदन बिनकौ घर–घर तैं
'परमानँद' प्रभु करी कृपा यौं ऐरावत आयौ चरननि परतैं

६८५ (बिलावल)

बाल–दसा कर पर लियौ मेरे बारे कन्हैया।
तेरे को काननि लगौ जिनि सिखयौ कन्हैया।।
देखि निरखि मुखरोहिनी मुसिक्यानी मैया।
एक हाथ ऊपर लियौ प्यावति है धैया।।
एरा चढि आइ कैं गिरौ पाँइ परैया।
कृष्णनाम आप राखि कैं ब्रजजन रखवैया।।
मधु मेवा पकवान दै चल्यौ लेत बलैया।
'परमानँद' प्रभु साँवरौ व्रज–जन कौ छैया।।

६८६ (धनाश्री)

देखौ इनि बदरनि का बरिआई।
नंद कौ लाल हठीलौ मोहन तासों इन्द्र ढीठ झर लाई।।
पूरिष दंड नंद पें माँगत इनि पुनि लाज गँवाई।
'परमानँद' सिव कों चापें जिहि बिना सीघ्र कन्हाई।।